भूमिका

रचनाकार की रचना का उद्देश्य है सौन्दर्य्य-सृष्टि। किन्तु सौन्दर्य्य की कोई ऐसी कसौटी होनी चाहिए, जिससे उसका परिचय प्राप्त किया जा सके। किसी को प्रकृति का सौन्दर्य्य प्रिय है, कोई मानव-सौन्दर्य्य का उपासक है और कोई प्रकृति और मानव के भीतर किसी अज्ञेय सत्ता के सौन्दर्य्य का अनुभव करके मुग्ध होता है। इनमे से जिसे एक प्रकार का सौन्दर्य्य प्रिय है अथवा तृप्ति प्रदान करता है उसे और प्रकार के सौन्दर्य्य का मिथ्या और नीरस ज्ञान पड़ना सम्भव है। यदि यह मान भी ले कि सौन्दर्य्य सर्वत्र है तो प्रश्न यह होता है कि सौन्दर्य्य-विशेष सौन्दर्य्य-राशि मे अपना क्या स्थान रखता है ? इस प्रकार के उत्तर से हमे एक बहुत बड़ी सुविधा हो सकती है—हमें रचनाकार की सौन्दर्य्य-सृष्टि का मूल्य आँकने में कठिनाई नहीं होगी।

यदि हम सभी प्रकार के सौन्दर्य्य की परीक्षा के लिए एक सर्वमान्य कसौटी का पता लगा सकें तो हमारा कार्य सरल हो

जाय। हमारी समझ में किसी को यह मानने में आपत्ति नहीं हो सकती कि वही सौन्दर्य्य उत्कृष्टतम है जो अधिक से अधिक काल तक हमारी अधिक से अधिक परितृप्ति कर सके। मनुष्य का शारीरिक सौन्दर्य्य कितने समय के लिए है? उसका सम्पूर्ण लावण्य एक क्षण मे नष्ट हो सकता है। इसी प्रकार फूल, लता आदि के सौन्दर्य्य का हाल समझिए। बालक के हँसने में जो माधुर्य है, कन्या की आँखों मे सरलता की जो छटा है वह किसी भी समय काल-कवलित हो सकती है। परन्तु चन्द्रमा की मुस्कराहट का यह हाल नही है; केवल यदा-कदा बादलों से आक्रान्त होने के अवसरों को छोड़कर साधारणतया वह जब कभी आकाश मे प्रकट होगा तभी अपने मन्द हास से सौन्दर्य्य-रसिक को उन्मत्त कर देगा। अनन्त काल से वह ऐसा करता आया है और अनन्त काल तक उससे ऐसा करते रहने की आशा है। उषा, सन्ध्या, बादल, पर्वत, समुद्र, रजनी आदि का सौन्दर्य्य-भण्डार अनन्त काल तक रिक्त नही हो सकेगा।

परन्तु यदि हम मनुष्य के शारीरिक सौन्दर्य्य से ध्यान हटा कर उसके उस सौन्दर्य्य पर दृष्टिपात करें जिसका सम्बन्ध उसके मन की विविध सरसतापूर्ण अवस्थाओं से है तब क्या कोई अन्तर नहीं उपस्थित होगा? इसमें कोई सन्देह नहीं कि मनुष्य के मानसिक सौन्दर्य्य का कल्पना-द्वारा रसास्वादन अधिक काल तक किया जा सकता है; उसकी मनोवैज्ञानिक

अवस्थाएँ उषा की तरह रंगीन, संध्या की तरह सुन्दर, बादल की तरह सरस और समुद्र की तरह विविध आनन्द-रत्नों की खान हैं।

किन्तु क्या ऐसा भी कोई सौन्दर्य्य है जो उषा, संध्या, बादल, पर्वत, समुद्र, रजनी तथा मनुष्य के मानसिक सौन्दर्य्य की गति से भी परे है, जिसका कभी क्षय नहीं होता, जिसमें क्षण भर के लिए भी परिवर्त्तन का भय नहीं है। हाँ, यह वह सौन्दर्य्य है जिसने अपने हृदय के रक्त से उषा की सृष्टि की है, अपने विषाद से अन्धकार मे और मन्द हास से ज्योत्स्ना तथा दामिनी मे प्राण-सञ्चार किया है। जिसने प्रभात काल के दूर्वादल को अपने गले का मौक्तिक हार प्रदान किया है, जिसने उपहार-रूप मे समुद्र को अपना विस्तार और पर्वत को अपना गौरव दिया है। इसी सौन्दर्य्य के दर्शन से जीवन की अपूर्णता नष्ट होती है और मानव-व्यक्तित्व इसी के चरणो पर अपने आप को निछावर करके कृतकृत्य हो जाता है; सौन्दर्य्य-रसिकता की सारी प्यास यहीं बुझ जाती है। इस सौन्दर्य्य का दर्शन करनेवाले की प्रतीक्षा और उत्कण्ठा का शमन एक बार ही हो जाता है। इस सौन्दर्य्य में तल्लीन हो जाने के बाद फिर तो जीवन की परम तपस्या की सिद्धि हो जाती है।

महाकवि सूरदास ने साधारण मानव-सौन्दर्य्य में तृप्ति-लाभ नहीं किया था; वे उसी महा सौन्दर्य्य के रसिक थे जिसकी ओर

ऊपर संकेत किया गया है। इस महा सौन्दर्य्य का दर्शन उन्होंने श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व में किया था। श्रीकृष्ण की चरितावलि उस विचित्र सौन्दर्य्य-राशि से सम्पन्न है जिसके एक अंश को, एक भाग को लेकर बड़े से बड़ा रसिक भी आनन्द से धन्य हो सकता है। वे नन्द-यशोदा के पुत्र, गोपियों के प्राण वल्लभ, कंस. जरासंध आदि राक्षसों के संहारक, और महाभारत के रण-क्षेत्र में ज्ञान के व्याख्याता के रूप में हमारे सामने आते हैं। पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण का चरित्र उस चतुर्दिग्गामी प्रकाश से परिपूर्ण है जो विभिन्न युगों के अज्ञानान्धकार को विभिन्न किरणों के द्वारा दूर कर सकता है। महाकवि सूरदास ने जिस युग में जन्म ग्रहण किया था उसमें श्रीकृष्ण के गोपी वल्लभ रूप ही की उपासना में युग-धर्म्म की, युग-समस्या की परितृप्ति हो रही थी। विभिन्न युगों की विभिन्न आवश्यकताएँ होती हैं, विभिन्न समस्याएँ होती हैं। सूरदास का समय आज का समय नहीं है। आज की समस्याएँ श्रीकृष्ण को गोपी वल्लभ रूप से देखने से हल नहीं हो सकतीं।

फिर भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि काव्य केवल युग-सत्य के निरूपण और गान से सन्तुष्ट नहीं हो जाता; वह सार्व-भौम और सर्वकालीन सत्य का गान जितनी ही अधिक मात्रा में करता है उतनी ही अधिक उसकी उत्कृष्टता समझनी चाहिए। सूर-दास के काव्य-सागर में युग-सत्य पूर्णिमा के चन्द्रमा की तरह

प्रतिबिम्बित अवश्य है, किन्तु जैसे सागर का अस्तित्व चन्द्रमा से सर्वथा स्वतन्त्र है, वैसे ही सूरदास का काव्य भी युग-सत्य को अभिव्यक्ति प्रदान करने के साथ साथ उससे स्वतन्त्र भी है।

सूरदास ने श्रीकृष्ण और गोपियों के जिस संयोग शृंगार का वर्णन किया है, उसे उनके समय की एक भावना-लहरी समझ कर उसकी ओर से आँख मूँद लीजिए, आप उनके उन पदों को पढ़िए जिनमे उन्होंने श्रीकृष्ण की बाल-लीला का अनुपम चित्रण किया है; जिनमें उन्होंने यशोदा के मातृ-हृदय का, गोपिकाओं के विरह-पीड़ित चित्त का वर्णन किया है; उनसे हृदय को वेध देने की कितनी अधिक शक्ति है; उनमे कितनी करुणा प्रवाहित है! सूरदास इन पदों की रचना कर के अमर हो गये हैं। करुणरस के कथन मे उनकी समता करनेवाला कवि आज तक हिन्दी-साहित्य मे अवतीर्ण नहीं हुआ।

वर्तमान युग श्रीकृष्ण को गीता के व्याख्याता और लोकोप-कारक महापुरुष के रूप मे देखना चाहता है। इस प्रवृत्ति के परितोष का कुछ प्रयत्न 'प्रियप्रवास' मे किया जा चुका है। किन्तु श्रीकृष्ण को सगुण ब्रह्म के रूप मे ग्रहण करने के बाद उन्हे मनुष्यरूप मे ग्रहण करना तो वैसा ही जान पड़ता है जैसे सूर्य्य को आकाश में न देखकर एक घड़े के भीतर उसका प्रति-बिम्ब मात्र देखना। जो हो वर्त्तमान अथवा भविष्य के कवियों के लिए श्रीकृष्ण की जीवन-प्रभा की अनेक रश्मियाँ अनुपम

काव्य-विषय प्रदान कर सकती हैं।

सूरदास ने श्रीकृष्ण की बाललीला से लेकर उनके द्वारिका-निवास तक की कथा पदों में कही है। उन्होंने उन्हें सगुण ब्रह्म के मानव शरीरधारी अवतार ही के रूप में अंकित किया है; उनकी दृष्टि मे श्रीकृष्ण ईश्वर हैं, उनमें दुर्बलता का लेश सम्भव नहीं; वे सर्व-समर्थ हैं और उनकी अलौकिक लीलाएँ मानवी बुद्धि के लिए अगम्य हैं। उनके सयोग-शृङ्गार-वर्णन में भी ब्रह्म और प्रकृति का विलास-चिन्तन ही उन्हें बेहद आवेश में डाल देता है। सूरदास की सी दृष्टि रखने वाले को शायद उन शृंगारिक पदों में भी कोई दोष न दिखायी पड़े। किन्तु फिर भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि सर्व-साधारण के लिए उपयुक्त नहीं हैं।

सूरदास के व्यक्तिगत जीवन के सम्बन्ध में ठीक ठीक बातें बहुत कम ज्ञात हैं। चौरासी वैष्णवों की वार्त्ता में गोकुलनाथ ने और भक्तमाल में नाभादास ने उनकी चर्चा की है। किम्वदन्ती उन्हें देहली के निकटवर्ती सीही ग्राम निवासी सारस्वत ब्राह्मण रामदास का पुत्र बतलाती है। उनका जन्म कब हुआ, इसके सम्बन्ध में कोई निश्चित बात कहना कठिन है। अनेक विद्वानों का मत है कि उनका जन्म सं० १५४० के लगभग हुआ होगा और मृत्यु सं० १६२५ के लगभग हुई होगी। वे महात्मा वल्लभाचार्य के शिष्य थे, जिनके पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथ ने अष्टछाप के आठ

प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित भक्तों में उन्हें सम्मिलित किया।

सूरदास आरम्भ ही से रसिक थे। कुछ काल तक उनकी यह रसिकता सांसारिकता की ओर प्रवाहित हुई होगी, परन्तु बाद को वे गहरी कृष्ण-भक्ति में तल्लीन हो गये। उनके विवाह करने का तो कोई प्रमाण नहीं मिलता, किन्तु एक स्त्री के सौन्दर्य्य से मुग्ध होने और बाद को ईश्वर प्रेम से प्रेरित होकर आँख फाड़ लेने की कहावत कही जाती है। चर्म-चक्षुओं से रहित होने पर सूरदास के ज्ञान-चक्षु और भी निर्मल हो गये।

सूरदास के समसामयिक अनेक कवि थे जिन्होंने हिन्दी साहित्य को अनुपम और अमूल्य रत्न प्रदान किये हैं—गोस्वामी तुलसीदास कविवर केशवदास आदि का नाम इस श्रेणी मे लिया जा सकता है। सूरदास ने उक्त दो कवियो की तरह विविध छन्दो के प्रयोग की ओर ध्यान नहीं दिया। उन्होंने जो कुछ कहा सो सब पदों मे कहा इसके अतिरिक्त सूरसागर को उस रूप मे प्रबन्ध-काव्य नहीं कह सकते जिस रूप में रामचरित्र-मानस और रामचन्द्रिका प्रबन्ध-काव्य हैं। बाललीला के वर्णन मे करुणरस के कथन में भक्ति के निवेदन में सूरदास और तुलसीदास की टक्कर होती है; किन्तु दोनों ही महाकवि अपना अपना व्यक्तित्व अपनी ही विशेषताओं से युक्त और एक दूसरे से पृथक बनाये रहते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि एकान्त आनन्द की धारा प्रवाहित करने में, भाषा और भाव का सामञ्जस्य-विधान

संगठित करने में, तथा लोकोक्तियों के नगीने जड़ने में सूरदास हिन्दी-साहित्य में तुलसीदास को छोड़कर शेष समस्त कवियों से ऊँचा स्थान रखते हैं।

इस संग्रह को हिन्दी साहित्य के विद्यार्थियों के योग्य बनाने में मैंने कई बातों को अपने दृष्टि-गत रक्खा है। पहली बात तो यह है कि मैंने इसमें ऐसे पद नहीं आने दिये हैं जिनसे सुकुमार मस्तिष्क वाले छात्रों पर अप्रिय प्रभाव पड़ने की आशङ्का हो। मैंने सम्पूर्ण संग्रह को सात भागों में विभक्त किया है; (१) बाललीला, (२) नन्द-यशोदा आदि की पीड़ा; (३) विरहिणी-गोपिका (४) उद्धव-संदेश (५) सुदामा-दैन्य-निवारण; (६) प्रभास-मिलन (७) भक्त-का-आवेदन। ये सभी विभाग ऐसे हैं जिनमें नव-युवकों और नव-युवतियों के चरित्र को उच्च बनाने में सहायक तथा कोमल मार्मिक और रमणीय भावों से अलङ्कृत लोकोत्तर आनन्द-प्रदायक पदों का संग्रह किया गया है। इस आयोजन से आशा है, पाठक लाभान्वित होंगे।

दारागञ्ज, प्रयाग { गिरिजादत्त शुक्ल

सूची

———

संगठित करने मे, तथा लोकोक्तियों के नगीने जड़ने में सूरदास हिन्दी-साहित्य मे तुलसीदास को छोड़कर शेष समस्त कवियों से ऊँचा स्थान रखते हैं।

इस संग्रह को हिन्दी साहित्य के विद्यार्थियों के योग्य बनाने में मैंने कई बातों को अपने दृष्टि-गत रक्खा है। पहली बात तो यह है कि मैंने इसमें ऐसे पद नहीं आने दिये हैं जिनसे सुकुमार मस्तिष्क वाले छात्रों पर अप्रिय प्रभाव पड़ने की आशङ्का हो। मैंने सम्पूर्ण संग्रह को सात भागों मे विभक्त किया है; (१) बाललीला; (२) नन्द-यशोदा आदि की पीड़ा; (३) विरहिणी-गोपिका (४) उद्धव-संदेश (५) सुदामा-दैन्य-निवारण; (६) प्रभास-मिलन (७) भक्त-का-आवेदन। ये सभी विभाग ऐसे हैं जिनमे नव-युवकों और नव-युवतियों के चरित्र को उच्च बनाने में सहायक तथा कोमल मार्मिक और रमणीय भावों से अलङ्कृत लोकोत्तर आनन्द-प्रदायक पदों का संग्रह किया गया है। इस आयोजन से आशा है, पाठक लाभान्वित होंगे।

दारागञ्ज, प्रयाग { गिरिजादत्त शुक्ल

सूची

———

बाल-लीला

१

भाई आजु ते बधाई बाजै नन्द महर के।
फूले फिरैं गोपी ग्वाल ठहर-ठहर के॥
फूली धेनु फूले धाम फूलीं गोपी अंग अंग,
फूले फूले तरुवर आनँद लहर के॥
फूले बंदी-जन द्वारे फूली फूले बन्दनवारे,
फूले जहाँ जोइ सोइ गोकुल सहर के॥
फूले फिरैं जादौ कुल अनँद समूल मूल,
अकुरित पुन्य फूले पिछले पहर के॥
उमगे जमुन-जल प्रफुलित कुंज कुंज,
गरजत कारे भारे जूथ जलधर के॥
नृत्यत मदन फूले फूली रति अंगअंग,
मन के मनोज फूले हलधर हरि के॥
फूले द्विज संत वैद मिटि गयो कंस-खेद,
गावत बधाई सूर भीतर बहर के॥

२

कर गहि पग अँगुठा मुख मेलत ।
प्रभु पौढ़े पालने अकेले, हरपि हरपि अपने रँग खेलत ॥
सिव सोचत बिधि बुद्धि बिचारत, बट बाढ्यो सागर जल झेलत ।
बिडरि चले घन प्रलय जानिकै, दिगपति दिगदंती न सकेलत ॥
मुनि मन भीत भये भव कंपित सेप सकुचि सहसौ फन पेलत ।
उन ब्रजबासिन बात न जानी, समुझे सूर सकट पगु पेलत ॥

३

लालन हौं, वारी तेरे मुख पर ।
माई मोरिही डीठि न लागै ताते मसि-बिन्दा दयो भ्रू पर ॥
सर्वसु मैं पहिले ही दीनो नान्ही नान्हीं दंतुली दू पर ।
अब कहा करौं निछावरि सूर जसोमति अपने लालन ऊपर ॥

४

लाला हौ वारी तेरे मुख पर ।
कुटिल अलक मोहन मन विहँसत, भृकुटि विकट पंकज नैननि पर ॥
द्वैद्वै दमकि दँतुलियाँ विहँसत, मनु सीपिज घरु किय बारिज पर ।

लघु लघु सिर लट घूँघरवारी, रही लटकि लौनी लिलार पर ॥
यह उपमा कहि कापै आवै, कछुक सकुचत हौं हिय पर ।
नूतन चन्द्ररेख मधि राजति सुर गुरु सुक्र उदोत परसपर ॥
लोचन लोल कपोल ललित अति, नासिक को मुक्तारद छद पर ।
सूर कहा न्योंछावरि करिये, अपने लाल ललित लर ऊपर ॥

———

५

जसोदा मदन गुपाल सुवावै ।
देखि सुपन-गति त्रिभुवन काँप्यौ ईस विरंचि भ्रमावै ॥
असित अरुन सित आलस लोचन, उभै पलक पर आवै ।
जनु रविगति संकुचित कमल जुग निसि अलि उड़न न पावै ॥
चौंकि चौंकि सिसु दसा प्रगट करि छवि मन मे नहिं आवै ।
मानो निसिपति धरि कर अमिरित स्तुति भंडार भरावै ॥
स्वास उदर उरसति यों, मानो दुग्ध सिंध छबि पावै
नाभि-सरोज प्रगट पद्मासन, उतरि नाल पछितावै ॥
कर सिर तरु करि स्याम मनोहर, अलक अधिक सों भावै ।
सूरदास मानौ पन्नगपति प्रभु ऊपर फन छावै ।

———

६

कहाँ लौं बरनौं सुन्दरताई। (X)

खेलत कुँवर कनक आँगन में, नैन निरखि छबि छाई॥
कुलहि लसत सिर स्याम सुभग अति, बहुविधि सुरंग बनाई।
मानो नवघन ऊपर राजत, मघवा धनुष चढ़ाई॥
अति सुदेस मृदु हरत चिकुर मन, मोहन मुख बगराई।
मानो प्रगट कंज पर मंजुल, अलि-अवली फिरि आई॥
नील स्वेत पर पीत लालमनि, लटकन भाल लुनाई।
सनि-गुरु-असुर देव-गुरु मिलि मनु भौम सहित समुदाई॥
दूधदंत दुति कहि न जाति अति अद्भुत इक उपमाई।
किलकत हँसत तुरत प्रगटत मनु घन में विद्यु छिपाई॥
खंडित बचन देत पूरन सुख, अल्प जल्प जलपाई।
घुटुअन चलत रेनु तनु मंडित, सूरदास बलि जाई॥

७

जसोदा हरि पालने झुलावै।

हलरावै दुलराइ मल्हावै जोइ सोइ कछु गावै॥
मेरे लाल कौं आउ निदरिया काहे न आनि सुवावै।
तू काहे नहिं वेगि सो आवै तोकौं कान्ह बुलावै॥

कबहुँ पलक हरि मूँदि लेत हैं अधर कबहुँ फरकावै।
सोवत जानि मौन ह्वै बैठी करि कर-सैन बतावै॥
इहि अन्तर अकुलाइ उठे हरि जसुमति मधुरै गावै।
जो सुख सूर अमर मुनि दुर्लभ सो नँद भामिनि पावै॥

८

जसुमत मन अभिलाष करै।
कब मेरो लाल घुटुरुअन रेंगै कब धरनी पग द्वैक धरै॥
कब द्वै दंत दूध के देखौं कब तुतरै मुख बैन झरै॥
कब नन्दहि कहि बाबा बोलै कब जननी कहि मोहिं ररैं।
कब मेरो अँचरा गहि मोहन जोइ सोइ कहि मोसों झगरै॥
कब धौं तनक तनक कछु खैहै अपने करसों मुखहिं भरै।
कब हँसि बात कहैगे मोसों छबि पेखत दुख दूरि करै।
स्याम अकेले आँगन छाँड़े आपु गई कछु काज घरै॥
एहि अन्तर अँधवारि उठी इक गरजत गगन सहित घहरै।
सब ब्रज लोग सुनत धुनि जो जहँ तहँ सब अतिहि डरै॥

९

गहे अँगुरिया लाल की नँद चलन सिखावत।
अरबराइ गिरि परत हैं कर टेकि उठावत॥

बार बार बकि स्याम सों कछु बोल बकावत।
दुहुँधा दोउ दँतुली भई अति मुख छबि पावत॥
कबहुँ कान्ह कर छाँड़ि नँद पग द्वैकरि धावत।
कबहुँ धरनि पर बैठि मन महँ कछु गावत॥
कबहुँ उलटि चल धाम को घुटुअन करि धावत।
सूरस्याम मुख देखि महर मन हरष बढ़ावत॥

———

१०

चंद्र खिलौना लैहों मैया मेरो. चद्र खिलौना लैहौं।
धौरी कौ पय पान न करिहौं बेनी सिर न गुथैहौं॥
मोतिन माल न धरिहौ उर पर भँगुली कंठ न लैहौं।
जैहों लोटि अबइ धरनी पर तेरी गोद न ऐहौं।
लाल कहैहौ नन्द बबा कौ. तेरो सुत न कहैहौं॥
कान लाय कछु कहति जसोदा ताउहिं नाहि सुनैहौ।
चन्दा हू ते अति सुदर तोहि नवल दुलहिया ब्यैहौं।
तेरी सौंह मेरी सुन मैया, अबहीं ब्याहन जैहौं।
सूरदास सब सखा बराती नूतन मङ्गल गैहौं॥

———

११

लेहौं री मा, चदा चहौंगो ।
कहा करौं जलपुट भीतर को, बाहर ओकि गहौंगो ॥
यह तौ झलमलात झकझोरत कैसे कै जु लहौंगो ।
वह तो निपट निकट ही देखत बरज्या हौं न रहौंगो ॥
तुमरो प्रेम प्रगट मै जान्यो बौराए न बहौंगो ।
सूरस्याम कहै कर गहि ल्याऊँ ससि तनु-ताप दहौंगो ॥

१२

मैया मेरी, मै नहिं माखन खायो ।
भोर भयो गैयन के पीछे मधुबन मोहिं पठायौ ।
चार पहर बसीबट भटक्यौ साँझ परे घर आयौ ॥
मैं बालक बहियन को छोटौ छीका किहि बिधि पायौ ।
ग्वालबाल सब बैर परे है, बरबस मुख लपटायौ ॥
तू जननी मन की अति भोरी इनके कहे पतियायौ ।
जिय तेरे कछु भेद उपजिहै जानि परायौ जायौ ॥
यह ले अपनी लकुटि कमरिया बहुतहि नाच नचायौ ।
सूरदास तब बिहँसि जसोदा लै उर कण्ठ लगायौ ॥

१३

जागिये ब्रजराज कुँअर कमल कुसुम फूले।
कुमुद वृन्द सकुचत भये भृङ्गलता भूले॥
तमचुर खग रोर सुनहु, बोलत बनराई।
राँभति गौ खिरकन में बछरा हित धाई॥
विधु मलीन रवि-प्रकास, गावत नरनारी।
सूरस्याम प्रात उठौ, अंबुज-कर-धारी॥

१४

प्रात समय उठि सोवत हरि को वदन उघार्यौ नन्द।
रहि न सकत देखन कौ आतुर, नैन निसा के द्वन्द॥
स्वच्छ सेज में ते मुख निकसत, गयौ तिमिर मिटि मन्द।
मानो मथि सुर सिंधु फेन फटि, दरस दिखायौ चंद॥
धायौ चतुर चकोर सूर सुनि, सब सखि सखा सुछन्द।
रही न सुधिहु सरीर धीर मति, पिवत किरन मकरन्द॥

१५

मैया, कब बढ़िहै मेरी चोटी।
किती बार मोहिं दूध पियत भई यह अजहूँ है छोटी।

तू जो कहति बल की बेनी ज्यौं ह्वैहै लाँबी मोटी ॥
काढ़त गुहत नहावत पोंछत नागिन सी भ्वै लोटी ।
काचो दूध पिवावति पचि पचि देति न माखन रोटी ।
सूरस्याम चिरजीवौ दोउ भैया हरि-हलधर की जोटी ॥

१६

मैया, मोहि दाऊ बहुत खिझायो ।
मोसो कहत मोल को लीनो, तू जसुमति कब जायो ॥
कहा कहौं यहि रिस के मारे, खेलन हौं नहिं जातु ।
पुनि पुनि कहत कौन है माता, को है तुम्हरो तातु ॥
गोरे नन्द जसोदा गोरी, तुम कत स्याम सरीर ।
चुटुकी दै दै हँसत ग्वाल सब, सिखै देत बलबीर ॥
तू मोही को मारन सीखी, दाउहिँ कबहुँ न खीझै ।
मोहन को मुख रिस समेत लखि जसुमति सुनि सुनि रीझै ॥
सुनहु कान्ह बलभद्र चबाई, जनमत ही को धूत ।
सूरस्याम मो गोधन की सौं, 'हौं माता तू पूत' ॥

१७

मैया, मैं न चरैहौं गाइ ।
सिगरे ग्वाल घिरावत मोसों, मेरे पाइ पिराइ ॥

जौ न पत्याहि पूछि बलदाउहि, अपनी सौंह दिवाइ ॥
यह सुनि सुनि जसुमति ग्वालन कौं, गारी देति रिसाइ।
मैं पठवति अपने लरिका कौं, आवै मन बहराइ ॥
सूरस्याम मेरो अति बालक, मारत ताहि रिंगाइ ॥

१८

दै मैया भँवरा चकडोरी।
जाइ लेहु आरे पर राखौ काल्हि मोल लै राखौ कोरी ॥
लै आये हँसि स्याम तुरत ही देखि रहे रँग रँग बहु डोरी।
मैया बिना और का राखै बार बार हरि कहत निहोरी ॥
बोलि लिये सब सखा संग के खेलत स्याम नन्द की पौरी।
तैसेइ हरि तैसेई सब बालक कर भँवरा-चकरिनि की जोरी ॥
देखत जननि जसोदा यह छवि बिहँसी बारबार मुख मोरी।
सूरदास प्रभु हँसि हँसि खेलत ब्रज बनिता तृन डारति तोरी ॥

१९

जसुमति दौरि लये हरि कनियाँ।
आजु गयो मेरो गाइ चरावन हौं वलि गई निछनियाँ।
मो कारन कछु आन्यो है वलि वनफल तोरि कन्हैया ॥

तुमहिं मिले मैं अति सुख पायौ मेरो कुँअर कन्हैया।
कछुक खाहु जो भावै मोहन, देतिहुँ माखन रोटी॥
सूरदास प्रभु जीवहु जुग जुग हरि-हलधर की जोटी॥

२०

आजु मै गाइ चरावन जैहौं।
वृन्दावन के भाँति भाँति फल अपने करते खैहौं॥
ऐसी अबहिं कहौ जनि बारे, देखौ अपनी भाँति।
तनिक तनिक पाँइ चलिहौ कैसे आवत ह्वै है राति॥
प्रात जात गैयाँ लै चारन घर आवत हैं साँझ।
तुम्हरो कमल बदन कुम्हिलैहैं रेंगत घामहिं माँझ॥
तेरी सौ मोहिं घाम न लागत भूख नही कछु नेक।
सूरदास प्रभु कह्यौ न मानत परे आपनी टेक॥

२१

को माता को पिता हमारे ?
कब जनमत हमको तुम देख्यो हँसी लगत सुनि बात तुम्हारी।
कब माखन चोरी करि खायो, कब बाँधे महतारी॥
दुहत कौन की गैया चारत बात कही यह भारी।

तुम जानति मोहिं नन्द-ढुटौना, नन्द कहाँ ते आये।
तुम पूरन अविगति अविनासी माया सबनि भुलाये।
यह सुनि ग्वालिन सबै मुसकानी, ऐसेउ गुन हौ जानत।
सूरश्याम जो निदर्यौ सब ही मात-पिता नहिं मानत।

२२

सुंदर मुख की बलि बलि जाउँ।
लावनिनिधि गुणनिधि शोभानिधि,
निरखि निरखि जीवत सब गाउँ॥
अंग अंग प्रति अमित माधुरी,
प्रगटित रस रुचि ठाउँ।
तामें मृदु मुसुकानि मनोहर,
न्याय कहत कवि मोहन नाउँ।
नैन सैन दै दै जब हेरत,
तापर हौं बिन मोल बिकाउँ।
सूरदास प्रभु मदन मोहन छवि,
यह शोभा उपमा नहिं पाउँ॥

× × ×

२३

मैं बलि जाउँ श्याम मुख छबि पर।
बलि बलि जाउँ कुटिल कच बिथुरी,
बलि बलि जाउँ भृकुटि लिलाटतर॥
बलि बलि जाउँ चारु अवलोकनि,
बलिहारी कुंडल की।
बलि बलि जाउँ नन्द की सुललित,
बलिहारी वा छवि की॥
बलि बलि जाउँ अरुन अधरन की,
विद्रुम बिंब लजावन।
मैं बलि जाउँ दशन चमकन की,
वारौं तड़ित नसावन॥
मैं बलि जाउँ ललित ठोढ़ी पर,
बल मोतिन की माल।
सूर निरखि तनमन बलिहारौं,
बलि बलि यशुमति लाल॥

\+ + +

२४

अलकन की छवि अलिकुल गावत।
खंजन मीन मृगज लज्जित भये,
नैन नचावनि गतिहिं न पावत॥

मुख मुसकानि आनि उर अंतर,
अंबुज बुधि उपजावत।
सकुचत अरु बिगसित वा छबि पर,
अनुदिन जनम गँवावत॥
पूरण नहीं सुभग श्याम को,
यद्यपि जलधर ध्यावत।
बसन समान होत नहिं हाटक,
अग्नि झाँपदे आवत।
मुकतादाम विलोकि विलखि करि,
अवलि बलाक बनावत।
सूरदास प्रभु ललित त्रिभंगी,
मनमथ मनहिं लजावत॥

× × ×

२५

ब्रज युवती सब कहत परस्पर बन ते श्याम बने ब्रज आवत।
ऐसी छबि साम कबहुँ न पाई सखी सखी सों प्रगट देखावत॥
मोर मुकुट सिर जलजमाल उर कटि तट पीतांबर छबि पावत।
नव जलधर पर इंद्रचाप मनो दामिनि छबि विलोकि घन धावत॥

जेहि जु अंग अवलोकन कीन्हों सो तन मन तहँहीं बिरमावत ।
सूरदास प्रभु मुरली अधर धरे आवत राग कल्याण बजावत ॥

\+ + +

२६

मेरे नयन निरख सचुपावैं ।
बलि बलि जाउँ मुखारबिंद की बनते पुनि ब्रज आवैं ॥
गुजाफल अवतंस मुकुटमणि वेणु रसाल बजावै ।
कोटि किरणि मुख मे जो प्रकाशत उडुपति बदन लजावै ।
नटवर रूप अनूप छबीलो सबहिन के मन भावैं ।
सूरदास प्रभु चलन मंदगति बिरहिन ताप नसावैं ॥

\+ + +

२७

बलि बलि जाऊ मोहन मूरति की बलि बलि कुंडल बलि नैन विशाल ।
बलि भ्रुकुटी बलि तिलक विराजत बलि मुरली बलि शब्द रसाल ॥
बलि कुंडल बलि पाग लटपटी बलि कपोल बलि उर बनमाल ।
बलि मुसुकानि महामुनि मोहत बलि उपरैना गिरिधर लाल ॥
बलि भुज सखा अंग पर मेले बलि कुलही बलि सुन्दर चाल ।
बलि काछनी चोलना की बलि सूरदास बलि चरण गोपाल ॥

\+ + +

२८

माधो जू के तन की शोभा कहत नाहिं बनि आवै।
अचवत आदर लोचन पुट दोउ मनु नहिं तृपिता पावै॥
सघन मेघ अतिश्याम सुभग वपु तड़ित वसन बगमाल।
सिर शिखंड नवधातु विराजत सुमन सुरग प्रवाल॥
कछुक कुटिल कमनीय सघन अति गोरज मडित केश।
अंबुज रुचिर परागं पर मानो राजत मधुप सुदेश॥
कुंडल लोल कपोल किरणि गण नैन कमल दल मीन।
अधर मधुर मुसकानि मनोहर करत मदन मन हीन॥
प्रति प्रति अग अनग कोटि छवि सुन सखी परम प्रवीन।
सूर दृष्टि जहं जहँ परति तहों तहीं रहति ह्वै लीन॥

२९

इक दिन हरि हलधर सँग ग्वालन।
प्रात चले गोधन बन चारन॥
कोउ गावत कोउ वेणु बजावत।
कोउ सिंगी कोउ नाद सुनावत॥
खेलत हँसत गए घन महियाँ।
चरन लगीं जित कित सब गैयाँ॥

हरि ग्वालन मिलि खेलन लाये।
सूर अमंगल मन के भाये॥ २९

\+ + +

३०

बने हैं विशाल कमल दल नैन।
ताहू में अति चारु बिलोकनि गूढ़भाव सूचत सखि सैन॥
वदन सरोज निकट कुंचित कच मनहु मधुप आए मधु लैन।
तिलक तरनि शशि कहत कछुक हँसि बोलत मधुर मनोहर बैन॥
मदननृपति को देश महामद बुधि बल बसि न सकत उर चैन।
सूरदास प्रभु दूत दिनहीं दिन पठवत चरित चुनौती दैन॥

\+ + +

३१

मोहन वदन बिलोकत अँखियन उपजत है अनुराग।
तरनि ताप तलफत चकोरगति पिवत पियूष पराग॥
लोचन नलिन नये राजत रति पूरण मधुकर भाग।
मानहु अलि आनंद मिले मकरंद पिवत रतिफाग।
भँवरिभाग भृकुटी पर कुमकुम चंदन विन्दु विभाग।
चातक सोम शक्र धनु धन में निरखत मनु वैराग॥

३२

कुंचित केसै मयूर चन्द्रिका मडल सुमन सुपाग।
मानहु मदन धनुप शर लीन्हें बरषत है वन बाग॥
अधरबिंब बिहँसान मनोहर मोहन मुरली राग।
मानहु सुधा पयोधि घेरि घन ब्रज पर बरपन लाग॥
कुडल मकर कपोलनि झलकत श्रम सीकर के दाग।
मानहु मीन मकर मिलि क्रीड़त शोभित शरद तड़ाग॥
नासा तिलक प्रसून पदविपर चिबुक चारु चित खाग।
दाड़िम दशन मदगति मुसकनि मोहत सुर नर नाग॥
श्रीगोपाल रस रूप भरी है सूर सनेह सोहाग।
ऐसी शोभा सिंधु बिलोकन इन अँखियन के भाग॥

\+ \+ \+

३३

सुनहु सखी मैं बूझति तुमको काहू हरि को देखे है।
कैको तन कैसो रँग देखियत कैसी बिधि करि भेषे है॥
कैसो मुकुट कुटिल कच कैसे सुभग भाल भ्रुव नीके हैं।
कैसे नैन नासिका कैसी श्रवणनि कुडल पी के हैं॥
कैसे अधर दशन द्युति कैसी चिबुक चारु चित चोरत हैं।
कैके निरखि हँसत काहू तन कैसे वदन सिकोरत हैं।

कैसी उरमाला है शोभित कैसी भुजा बिराजत हैं।
कैसे कर पहुँची हैं कैसी कैसी अँगुरिआ राजत हैं॥
कैसी रोमावली श्याम के नाभि चारु कटि सुनियत है।
कैसी कनक मेखल कैसो कछनी नहिं मन गुनियत हैं॥
कैसे जंघ जानु कैसे दोउ कैसे पद नहि जानति हैं।
सूर स्याम अँग अँग की शोभा देखे की अनुमानति हैं॥

× × ×

३४

ऐसे सुने नन्दकुमार।
नख निरखि शशि कोटि वारत चरण कमल अपार॥
जानु जंघ निहारि रंभा करनि डारत वारि।
काछनी पर प्राण वारत देखि शोभा भारि॥
कटि निरखि तनु सिंह वारत किंकिनी जु मराल।
नाभि पर ह्रद आपु वारत रोमावली अलिमाल॥
हृदय मुकुतामाल निरखत वारि अवलि वलाक।
करज कर पर कमल वारत चलति जहाँ तहाँ साक॥
भुजा पर वर नाग वारत गये भागि पताल।
ग्रीव की उपमा नहीं कहुँ लखति परम रसाल॥
चिबुक पर चित वारि हारत अधर अंबुज लाल।
बंधूक बिद्रुम बिंब वारत ते भये बेहाल॥

वचन सुनि कोकिला वारत दशन दामिनि कांति।
नासिका पर कीर वारत चारु लोचन भाँति॥
कंज खंजन मीन मृग शावकनि डारति वारि।
भ्रुकुटि पर सुर चाप वारत तरनि कुंडल हारि॥
अलक पर वारत अँध्यारी तिलक भाल सुदेश।
सूर प्रभु सिर मुकुट धारे धरे नटवर भेष॥

× × ×

३५

ऐसी विधि नन्दलाल कहत सुने माई री।
देखे जो नैन रोम रोम प्रति सुभाई री॥
विधि ने द्वै नैन रचे अग ठानि ठान्यो।
लोचन नहिं बहुत दिये जानिकै भुलान्यो॥
चतुरता प्रवीनता विधाता को जानै।
अब कैसे लगत हमहिं वात न अयाने॥
त्रिभुवनपति तरुन कान्ह नटवर वपु काछे।
हमको द्वै नैन दिये तेऊ नहिं आछे॥
ऐसो विधि को विवेक कहाँ कहा वाको।
सूर कबहुँ पाऊँ जो कर अपने ताको॥

+ + +

३६

मुख पर चन्द्र डारौं वारि।
कुटिल कच पर भौंर वारौं भौंह पर धनु वारि॥
भाल केसरि तिलक छबि पर मदन शत शर वारि।
मनु चली बहि सुधा धारा निरखि मनधौं वारि॥
नैन खंजन मृग मीन वारौं कमल के कुलवारि।
मनों सुरसति यमुन गंगा उपमा डारौं वारि॥
निरखि कुंडल तरुनि वारौं कूप श्रवननि वारि।
झलक ललित कपोल छबि पर मुकुर शत शत वारि॥
नासिका पर कीर वारौं अधर विद्रुम वारि।
दशन एकन वज्र वारौं बीज दाड़िम वारि॥
चिबुक पर चित वित्त वारौं प्राण डारौं वारि।
सूर हरि की अंग शोभा को सकै निरवारि॥

+ + +

३७

बाँसुरी विधिहू ते प्रवीन।
कहिये काहि आहि कर ऐसो कियो जगत आधीन॥
चारि बदन उपदेश विधाता थापी थिर-चर-नीति।
आठ बदन गरजति गरबीली क्यों चलिए यह रीति॥

३९

नटवर भेष धरे ब्रज आवत ।
मोर मुकुट मकराकृत कुण्डल कुटिल अलक मुख पर छवि पावत ॥
भृकुटी बिकट नैन अति चंचल यह छबि पर उपमा इक धावत ॥
धनुष देखि खंजन विधि डरपत उड़ि न सकत उठिये अकुलावत ॥
अधर अनूप मुरलि-सुर पूरत गौरी राग अलाप बजावत ॥
सुरभी वृन्द गोप बालक संग गावत अति आनन्द बढ़ावत ॥
कनक मेखला कटि पीतांबर नृत्यत मंद मंद सुर गावत ॥
सूर स्याम प्रति अंग माधुरी निरखत ब्रज-जन के मन भावत ॥

४०

रास-रस-रीति नहिं बरनि आवै ।
कहाँ वैसी बुद्धि, कहाँ वह मन
लहौं कहाँ इहि चित्त जिय भ्रम भुलावै ॥
जो कहौं कौन माने निगम अगम जो,
कृपा बिन नहीं जो रसहि पावै ।
भाव सौं भजै बिना भाव मे जे नही,
भाव ही मांहि भाव जह बसावै ॥

जहै निज मंत्र जह ग्यान जह ध्यान है,
दरस दपति भजन-सार गाऊँ।
जहै माँगौं बार बार प्रभु सूर के नैन दोउ,
रहैं, अरु नित्य नर-देह पाऊँ

४१

अद्भुत कौसल देखि सखी री, श्री वृन्दावन होड़ परी री।
उत घन उदित सहित सौदामिनि, इत मुदित राधिका हरी री॥
उत वन पाँति शोभित इत सुन्दर धाम बिलास सुदेस खरी री।
उत घन गरज इहाँ मुरली धुनि, जलधर उत इत अमृत भरी री॥
उतहि इन्द्र धनु इत बनमाला, अति विचित्र हरिकण्ठ धरी री।
सूर साथ प्रभु कुँअरि राधिका, गगन की सोभा दूरि करी री॥

कृष्ण-प्रवास तथा नन्द-
यशोदा आदि
की पीड़ा

४२

मथुरापुर में शोर पर्‌यो ।

गर्जत कंस वंश सब साजे, मुख को नीर हर्‌यो ॥

पीरो भयो फेफरी अधरन हृदय अतिहि डर्‌यो ।

नंद महर के सुत दोउ सुनिकै नारिन हर्ष भर्‌यो ॥

इन्दु बदन नव जलद सुभग तनु दोउ खग नैन कह्यो ।

सूर श्याम देखत पुर नारी उर उर प्रेम भर्‌यो ॥

४३

रथ पर देखि हरि बलराम ।

निरखि कोमल चारु मूरति हृदय मुकुता-दाम ॥

मुकुट कुंडल पीत पट छबि अनुज भ्राता श्याम ।

रोहिणीसुत एक कुंडल गौरतनु सुखधाम ॥

जननि कैसे धर्‌यो धीरज कहति सब पुरवाम ।

बोलि पठये कंस इनको करै धौं कहा काम ॥

जोरि कर विधि सों मनावति लै अशीशै नाम।
न्हात बार न खसै इनको कुशल पहुँचै धाम॥
कंस को निर्वंश ह्वैहै करत इन पर ताम।
सूर प्रभु नन्दसुवन दोउ हंस बाल उपाम॥

४४

देख री आजु नैन भरि हरिजू के रथ की शोभा।
योग यज्ञ जप तप तीरथ व्रत कीजत है जेहि लोभा॥
चारु चक्र मणि खचित मनोहर चचल चमर पताका।
श्वेत छत्र मनो शशि प्राची दिशि उदय कियो निशि राका॥
घन तन श्याम सुदेश पीत पट शीश मुकुट उर माला।
जनु दामिनि घन रवि तारागण प्रगट एक ही काला॥
उपजत छवि कर अधर शख मिलि सुनियत शब्द प्रशंसा।
मानहु अरुण कमल मंडल में कूजत हैं कल हंसा॥
मदन गोपाल देखियत हैं सब अब दुख शोक बिसारी।
पैठे हैं फुलकसुत गोकुल लेन जो इहाँ सिधारी॥
आनंदित चेत जननि तात हित कृष्ण मिलन जिय आए।
सूरदास यदुकुल हित कारण माधो मधुपुरि आए॥

४५

वे देखो आवत हैं ब्रज ते बने वनमाली।
घन तन श्याम सुदेह पीत पट सुदर नैन विशाली॥
जिनि पहिले पलना पौढ़े पय पीवत पूतना दाली।
अघ बक बच्छ अरिष्ट केशी मथि जल ते काढ्यो काली॥
जिन हति शकट प्रलब तृणावृत इंद्र प्रतिज्ञा टाली।
एते पर नहि तजत अघोड़ी कपटी कस कुचाली।
अब विधु वदन विलोकि सुलोचन श्रवण सुनत ही आली।
धन्य सुगोकुल नारि सूर प्रभु प्रकट प्रीत प्रतिपाली॥

४६

एई माधो जिन मधु मारे री।
जन्मत ही गोकुल सुख दीन्हों नंददुलार बहुत सारे री॥
केशी तृणावर्त्त वृषभासुर हती पूतना जब वारे री।
इंद्र कोप वर्षत गिरि धारयो महावज्र व्रज टारे री॥
बल समेत नृप कंस बोलाये रचे रङ्ग अति भारे री।
सूर अशीश देति सब सुन्दरि जीवहिं अपनी माँ प्यारे री॥

४७

भये सखि नैन सनाथ हमारे।
मदन गोपाल देखन ही सजनी सब दुख शोक बिसारे॥
पठए हैं सुफलकसुत गोकुल लेन जो इहाँ सिधारे।
मल्ल युद्ध प्रति कंस कुटिल मति छल करि इहाँ हँकारे॥
मुष्टिक अरु चाणूर शैल सम सुनियत हैं अति भारे।
कोमल कमल समान देखियत ये यशुमति के बारे॥
ह्वै यह जीति विधाता इनकी करहु सहाय सवारे।
सूरदास चिरजीवहु युग युग दुष्ट दलै दोउ नंददुलारे॥

४८

भोर भयो जागो नदलाल।
नदराइ निरखत मुख हरषे पुनि आये सब ग्वाल॥
देखि पुरी अति परम मनोहर कंचन कोट विशाल।
कहन लगे सब सूर प्रभू सों होउ इहाँ भूपाल॥

४९

हरि बल सोभित यों अनुहार।
शशि अरु सूर उदय भए मानो दोऊ एकहि बार॥
ग्वालबाल सँग करत कौतूहल गवन पुरी मँझार।
नगर नारि सुनि देखन धाईं रति पति गेह विसार॥
उलटि अंग आभूषण साजत रही न देह सँभार।
सूरदास प्रभु दरश देखिकै भईं चकृत न विचार॥

५०

वै देखो आवत दोऊ जन।
गौर श्याम नट नील पीत पट जनु दामिनी मिली घन॥
लोचन वंक विशाल चितैकै हरत तवै सबके मन।
कुंडल श्रवण कनक मणि भूषित जड़ित लाल अति लोल मीनतन॥
वन्दन चित्र विचित्र अङ्ग सिर कुसुम सुवास धरे नँदनन्दन।
बलि बलि जाऊँ चलहि जेहि मारग संग लगाइ लेत मधुकरगन॥
धन्य सु भूमि जहाँ पग धारे जीतहिगे रिपु आजु रंगरन।
सूरदास वै नगर नारि सब लेत बलाइ वारि अंचल सन॥

+ + +

५१

तब बोले हरि नंद सों मधुरे करि बानी।
गर्ग वचन तुम ने कही नहिं निहचै जानी॥
मैं आयो संसार में भुव भार उतारन।
तिनको तुम धनि धन्य हो कीन्हों प्रतिपारन॥
मातु पिता मेरे नहीं तुम ते अरु कोऊ।
एक बेर ब्रज लोग को मिल हौं सुनौ सोऊ॥
मिलन बिछुरन दिन चारि को तुम तो सब जानौ।
मो को तुम अति सुख दियो मो कहा बखानौं॥
मथुरा नर नारी सुनै व्याकुल ब्रजवासी।
सूर मधुपुरी आइकै ए भए अविनासी॥

\+ \+ \+

५२

निठुर वचन जिनि कहो कन्हाई।
अतिहि दुसह सह्यो नहिं जाई॥
तुम हँसिकै बोलत ए बानी।
मेरे नयन भरत है पानी॥
अब ए बोल कबहुँ जिनि बोलौ।
तुरत चलौ ब्रज आँगन डोलौ॥
पथ निहारत यशुमति ह्वैहै।

तुम बिन मो को देखि सुखैहै ॥
तब हलधर नन्दहि समुझावत ।
कछु करि काज तुरत ब्रज आवत ॥
जननि अकेली व्याकुल ह्वैहै ।
तुमहिं गए कछु धीरज लैहै ॥
बहुत कियो प्रतिपाल हमारो ।
जाइ कहाँ उर ध्यान तुम्हारो ॥
व्याकुल होन जननि जिनि पावै ।
बार बार कहि कहि समुझावै ॥
व्याकुल नंद सुनत ए बानी ।
डसि मानो नागिनी पुरानी ॥
व्याकुल सखा गोप भए व्याकुल ।
अन्तक दशा भयो भय आकुल ॥
सूर श्याम मुख निरखत ठाढ़े ।
मनों चितेरे लिखि सब काढ़े ॥

\+ \+ \+

५३

गोपालराइ हौं न चरण तजि जैहौं ।
तुमहिं छाँड़ि मधुवन मेरे मोहन कहा जाइ ब्रज लैहौं ॥

तुम बिन मो को देखि सुखैहै ॥
तब हलधर नन्दहि समुझावत ।
कछु करि काज तुरत ब्रज आवत ॥
जननि अकेली व्याकुल ह्वैहै ।
तुमहिं गए कछु धीरज लैहै ॥
बहुत कियो प्रतिपाल हमारो ।
जाइ कहाँ उर ध्यान तुम्हारो ॥
व्याकुल होन जननि जिनि पावै ।
बार बार कहि कहि समुझावै ॥
व्याकुल नंद सुनत ए बानी ।
डसि मानों नागिनी पुरानी ॥
व्याकुल सखा गोप भए व्याकुल ।
अन्तक दशा भया भय आकुल ॥
सूर श्याम मुख निरखत ठाढ़े ।
मनों चितेरे लिखि सब काढ़े ॥

\+ \+ \+

५३

गोपालराइ हौं न चरण तजि जैहौं ।
तुमहिं छाँड़ि मधुवन मेरे मोहन कहा जाइ ब्रज लैहौं ॥

५१

नंद बोले हरि नंद सों मधुरे करि बानी।
गर्ग वचन तुम ने कह्यौ नहिं निहचै जानी॥
मैं आयो संसार में भुव भार उतारन।
तिनको तुम धनि धन्य हौ कीन्हों प्रतिपारन॥
मातु पिता मेरे नहीं तुम ते अरु कोऊ।
एक बेर ब्रज लोग को मिलहौं सुनौ सोऊ॥
मिलन छिलन दिन चारि को तुम तो सब जानौ।
मो को तुम अति सुख दियो सो कहा बखानौं॥
मथुरा नर नारी सुनै व्याकुल ब्रजवासी।
सूर मधुपुरी आइकै ए भए अविनासी॥

\+ \+ \+

५२

निठुर वचन जिनि कहौ कन्हाई।
अतिहीं दुसह सह्यो नहिं जाई॥
तुम हँसिकै बोलत ए बानी।
मेरे नयन भरत हैं पानी॥
अब ए बोल कबहूँ जिनि बोलौ।
तुरत चलौ ब्रज आँगन डोलौ॥
पथ निहारत जसुमति ह्वैहै।

माया मोह मिलन अरु बिछुरन ऐसे ही जग जाइ।
सूर श्याम के निठुर वचन सुनि रहे नयन जल छाइ ॥

+ + +

५५

यह सुनि भए व्याकुल नंद।
निठुर वाणी कही जब हरि परि गए दुखफंद ॥
निरखि मुख मुख रहे चकृत सखा अरु सब गोप।
चरित ए अक्रूर कीन्हे करत मन मन कोप ॥
धाइ चरणन परे हरि के चलहु ब्रज को श्याम।
कस असुर समेत मारे सुरन के करि काम ॥
मोचि बन्धन राज दीनों हर्ष भए वसुदेव।
सूर येशुमति बिनु तुम्हारे कौन जानै देव ॥

+ + +

५६

नंद बिदा ह्वै घोष सिधारो।
बिछुरन मिलन रच्यो बिधि ऐसो यह संकोच निवारो ॥

कैहौं कहा जाइ यशुमति सों जब सन्मुख उठि ऐहैं।
प्रात समय दधि मथत छाँड़िकै काहि कलेऊ दैहैं॥
बारह वर्ष दयो हम ठाढ़ो यह प्रताप बिनु जाने।
अब तुम प्रगट भए वसुदेवसुत गर्गवचन परमाने॥
कत हम लागि महारिपु मारे कत आपदा बिनासी।
डारि न दियो कमल कर ते गिरि दवि मरते ब्रजवासी॥
वासर संग सखा सब लीन्हें टेरि न धेनु चरैहौ।
क्यों रहिहैं मेरे प्राण दरश बिनु जब संध्या नहिं ऐहौ॥
अब तुम राज्य करौ कोटिक युग मातपिता सुख दैहौ।
कबहुँक तात तात मेरे मोहन या सुख मो सों कैहौ॥
ऊरध श्वास चरण गति थाक्यो नैनन नीर न रहाइ।
सूर नंद बिछुरे की वेदन मो पै कहिय न जाइ॥

\+ \+ \+

५४

वेगि ब्रज को फिरिए नँदराइ।
हमहिं तुमहिं सुत तात को नातो और पर्‌यो है आइ॥
बहुत कियो प्रतिपाल हमारो सो नहिं जीते जाइ।
जहाँ रहै तहँ तहाँ तुम्हारे डारो जिनि बिसराइ॥

माया मोह मिलन अरु बिछुरन ऐसे ही जग जाइ।
सूर श्याम के निठुर वचन सुनि रहे नयन जल छाइ ॥

+ + +

५५

यह सुनि भए व्याकुल नंद।
निठुर वाणी कही जब हरि परि गए दुखफंद ॥
निरखि मुख मुख रहे चकृत सखा अरु सब गोप।
चरित ए अक्रूर कीन्हें करत मन मन कोप ॥
धाइ चरणन परे हरि के चलहु व्रज को श्याम।
कस असुर समेत मारे सुरन के करि काम ॥
मोचिं बन्धन राज दीनों हर्ष भए वसुदेव।
सूर यशुमति बिनु तुम्हारे कौन जानै देव ॥

+ + +

५६

नंद बिदा ह्वै घोष सिधारो।
बिछुरन मिलन रच्यो बिधि ऐसो यह संकोच निवारो ॥

कहियो जाइ यशोदा आगे नैन नीर जिनि ढारौ।
सेवा करी जानि सुत अपने कियो प्रतिपाल हमारो॥
हमैं तुम्हैं कछु अंतर नाहीं तुम जिय ज्ञान विचारौ।
सूरदास प्रभु यह विनती है उर जिनि प्रीति बिसारौ॥

\+ \+ \+

५७

मेरे मोहन तुमहिं बिना नहिं जैहौं।
महरि दौरि आगे जब ऐहै कहा ताहि मैं कैहौं॥
माखन मथि राख्यो ह्वैहै तुम हेतु चलौ मेरे बारे।
निठुर भए मधुपुरी आइके काहे असुरन मारे॥
देख्यो पायो वसुदेव देवकी अरु सुख सुरन दियो।
यहै कहत नँद गोप सखा सब बिदुरन चहत हियो॥
तब माया जड़ता उपजाई ऐसो प्रभु यदुराई।
सूर नन्द परबोधि पठावत निठुर ठगोरी लाई॥

\+ \+

५८

नन्दहिं कहत हरि ब्रज जाहु।
कितिक मथुरा ब्रजहि अन्तर जिय कहा पछिताहु॥

कहा व्याकुल होत अतिही दूरिहूँ कहुँ जात।
निठुर उर में ज्ञान धरत्यो मानि लीन्हों तात॥
नंद भए कर जोरि ठाढ़े तुम कहे ब्रज जाउ।
सूर मुख यह कहत वाणी चित नहीं कहुँ ठाउ॥

५९

तुम मेरी प्रभुता बहुत करी।
परम गँवार ग्वाल पशुपालक नीच दशा लै उच्च धरी॥
रोग दोष संताप जनम के प्रगटत ही तुम सबै हरी।
अष्ट महासिधि और नवो निधि कर जोरे मेरे द्वार खरी॥
तीनि लोक अरु भुवन चतुर्दश वेद पुराणन सही परी।
सूरदास प्रभु अपने जन को देत परम सुख घरी घरी॥

६०

उठे कहि माधौ इतनी बात।
जेते मान सेवा तुम कीन्हीं बदलो दयो न जात॥
पुत्र हेतु प्रतिपाल कियो तुम जैसे जननी तात।
गोकुल बसत खवावत खेलत दिवस न जान्यो जात॥

होहु विदा घर जाहु गुसाईं माने रहिए नात।
ठाढ़ो थक्यो उतर नहिं आवै लोचन जल न समात॥
भए बलहीन खीन तनु कंपित ज्यों बयारि बस पात।
धकधकात मन बहुत सूर उठि चले नंद पछितात॥

६१

फिरि करि नंद न उत्तर दीन्हों।
रोम रोम भरि गया वचन सुनि मनहुँ चित्र लिखि कीन्हों॥
यह तो परपरा चलि आई सुख दुख लाभ अरु हानि।
हम पर बना मया करि रहियो सुत अपनो जिय जानि॥
को जलपै काके पल लागे निरखि वदन सिर नायो।
दुख समूह हृदये परिपूरण चलत कंठ भरि आयो॥
अध अध पद भुव भई कोटि गिरि जौ लगि गोकुल पैठो।
सूरदास अस कठिन कुलिशहु ते अजहुँ रहत तनु वैठो॥

६२

चले नंद ब्रज को समुहाइ।
गोप सखा हरि बोधि पठाए सबै चले अकुलाइ॥

काहू सुधि न रही तन की कछु लटपटात परे पाँइ।
गोकुल जात फिरत पुनि मधुवन मन पुनि उतहि चलाइ॥
विरह सिन्धु में परे चेत बिन ऐसेहि चले बहाइ।
सूर श्याम बलराम छाँड़िकै ब्रज आए नियराइ॥

६३

बार बार मग जोवति माता।
व्याकुल बिन मोहन बल भ्राता॥
आवत देखि गोप नँद साथा।
बिवि बालक बिनु भई अनाथा॥
धाई धेनु वच्छ ज्यों ऐसे।
माखन बिना रहैं वां कैसे॥
ब्रजनारी हरषित सब धाई।
महरि जहाँ तहँ आतुर आई॥
हरषित मात रोहिणी धाई।
उर भरि हलधर लेहुँ कन्हाई॥
देखे नंद गोप सब देखे।
बल मोहन को तहाँ न पेखे॥
आतुर मिलन काज ब्रजनारी।
सूर मधुपुरी रहे मुरारी॥

६४

श्याम राम मथुरा तजि नंद ब्रजहि आए।
वार वार महरि कहति जनम धृग कहाए॥
कहूँ कहति सुनी नहीं दशरथ की करनी।
यह सुनि नंद व्याकुल ह्वै परे मुरछि धरनी॥
टेरि टेरि पुहुमि परति व्याकुल ब्रजनारी।
सूरज प्रभु कौन दोप हम को जु विसारी॥

६५

उलटि पग कैसे दीन्हों नंद।
छाँड़े कहाँ उभय सुत मोहन धृग जीवन मति मंद॥
कै तुम धन यौवन मदमाते कै तुम छूटे बंद।
सुफलकसुत वैरी भयो हम को लै गयो आनँदकंद॥
राम-कृष्ण बिन कैसे जीजै कठिन प्रीति के फंद।
सूरदास प्रभु भई अभागिनि तुम बिन गोकुल चंद॥

६६

दोउ ढोटा गोकुल नायक मेरे।
काहे नंद छाँड़ि तुम आए प्राण जीवन सब वेरे॥

तिनके जात बहुत दुख पायो रौरि परी यहि खेरे।
गोसुत गाइ फिरत हैं दह दिश बनं चरित्र न थोरे॥
प्रीति न करी राम-दशरथ की प्राण तजे बिन हेरे।
सूर नन्द सों कहति यशोदा प्रबल पाप सब मेरे॥

६७

यशोदा कान्ह कान्ह कै बूझै।
फूटि न गईं तिहारी चारौ कैसे मारग सूझै॥
इक तनु जरो जात बिन देखे अब तुम दीने फूक।
यह छतियाँ मेरे कुँवर कान्ह बिनु फटि न गए द्वै टूक॥
धृग तुम धृग वै चरण अहो पति अधबोलत उठि धाए।
सूर श्याम बिछुरन की हम पै देन बधाई आए॥

६८

नंद हरि तुमसों कहा कह्यो।
सुनि सुनि निठुर वचन मोहन के क्यों करि हृदय रह्यो॥
छाड़ि सनेह-चले मंदिर कत दौरि न चरन गह्यो।
फाटि न गई वज्र की छाती कत यहि शूल सह्यो॥
सुरति करत मोहन की बातैं नैनन नीर बह्यो।

सुधि न रही अति गलित गात भयो जनु डसि गयो अह्यो ॥
कृष्ण छाँड़ि गोकुल कत आए चाखन दूध दह्यो।
तजे न प्राण सूर दशरथ लौं हुतौ जन्म निबह्यो ॥

\+ + +

६९

मेरो अति प्यारो नँद नंद।
आए कहाँ छाँड़ि तुम उनको पोच करी मति मंद ॥
बल मोहन दोउ पीड़ नयन की निरखत ही आनंद।
सरवर घोप कुमोदिनि ब्रज-जन श्याम बदन बिन चंद ॥
काहे न पाँइ परे वसुदेव के घालि पाग गरे फंद।
सूरदास प्रभु अबके पठवहु सकल लोक मुनिबंद ॥

———

७०

तब तू मारिबोई करति।
रिसनि आगे कहि जो आवत अब लै भाँड़े भरति ॥
रोसकै कर दाँवरी लै फिरति घर घर धरति ॥
कठिन हिय करि तब जो बाँध्यो अब वृथा करि करति ॥

नृपति कंस बुलाइ पठयो बहुत कै जिय डरति।
इह कछू विपरीत मो मन माँझ देखी परति॥
होनहारी होइहै सोइ अब यहाँ कत अरति।
सूर तव किन फेरि राखेइ पाइ अब केहि परति॥

७१

कहा ल्यायो तजि प्राण जिवन धन।
राम कृष्ण कहि मुरछि परी घर यशुदा देखत लोगन॥
विद्यमान हरि वचन श्रवण सुनि कैसे गए न प्राण छूटि तन।
सुनी यह दशरथ की तऊ नहिं लाज भई तेरे मन॥
मन्द हीन अति भयो नन्द अति होत कहा पछिताने छिन छिन।
सूर नन्द फिरि जाहु मधुपुरी ल्यावहु सुत करि कोटि जतन॥

७२

कहो नन्द कहाँ छाँड़े कुमार।
कैसे प्राण रहे सुत बिछुरत पूछैं गोपी ग्वार॥
करुणा करै यशोदा माता नैनन नीर बहै असुरार।
चितवत नन्द ठगे से ठाढ़े मानो हार्यो हेम जुआर॥

मुरली नहिं सुनिअत ब्रज में सुर नर मुनि नहिं करत है बार
सूरदास प्रभु के बिछुरे ते कोऊ नहिं झाँकते द्वार

७३

ग्वालन कही ऐसी जाइ ।
भये हरि मधुपुरी राजा बड़े वंश कहाइ ॥
सूत मागध वदत विरदहि वरणि वसुद्यौ तात ।
राजभूषण अङ्ग भ्राजत अहिर कहत लजात ॥
मातु पितु वसुदेव देवै नन्द यशुमति नाहिं ।
यह सुनत जल नैन ढारत मीजि कर पछिताहिं ॥
मिली कुविजा मलै लैकै सो भई अरधङ्ग ;
सूर प्रभु वश भए ताके करत नाना रङ्ग ॥

७४

हरि की एकौ बात न जानी ।
कहौ कन्त कहाँ तज्यो श्याम को अतिहि विकल पूछति नँदरानी ॥
अब ब्रज सूनो भयो गिरिधर बिनु गोकुल मणि बिलगानी ।
दशरथ प्राण तज्यो छिन भीतर बिछुरत शारंगपानी ॥

ठाढ़ी रही ठगोरी डारी बोलत गदगद बानी।
सूरदास प्रभु गोकुल तजि गए मथुरा ही मनमानी॥

७५

लै आवहु गोकुल गोपालहि।
पाँइन परिकै वहु विनती करि बलि छलि बाह रसालहि॥
अबकी बार नेक देखरावहु यहि व्रज नन्द आपने लालहि।
गाइन गनत ग्वाल गोसुत सँग सिखवत वेणु रसालहि॥
यद्यपि महाराज सुख सम्पति कौन गिने मोती मणि लालहि।
तदपि सूर वे छिन न तजत हैं वा घुँघुची की मालहि॥

७६

सराहो तेरो नन्द हियो।
मोहन सों सुत छाँड़ि मधुपुरी गोकुल आनि जियो॥
कहा कहौं मेरे लाल लड़ैते जब तू विदा कियो।
जीवन प्रान हमारे व्रज को वसुदेव छीनि लियो॥
कह्यो पुकारि पार पचिहारी बरजत गमन कियो।
सूरदास प्रभु श्यामलाल धन ले पर हाथ दियो॥

७७

यद्यपि मन समझावत लोग।
शूल होत नवनीत देखि मेरे मोहन के मुख योग॥
निशिवासर छतियाँ लै लाऊँ बालक लीला गाऊँ।
वैसे भाग बहुरि ह्वैहैं मोहन मोद खवाऊँ॥
जा कारण मुनि ध्यान धरैं शिव अंग विभूति लगावै।
सो बालकलीला धरि गोकुल ऊखल साथ बँधावै॥
बिदरत नही बज्र को हिरदय हरि वियोग क्यो सहिए।
सूरदार प्रभु कमलनैन बिनु कौने विधि ब्रज रहिए॥

७८

नन्दब्रज लीजै ठोंकि बजाइ।
देहु बिदा मिलि जाहिं मधुपुरी जहँ गोकुल के राइ॥
नैनन पन्थ गयो क्यों सूझ्यो उलटि दियो जब पाइ।
रघुपति दशरथ सुनी है पर मरिबे गुण गाइ॥
भूमि मशान विदित ए गोकुल मनहु धाइ धाइ खाइ।
सूरदास प्रभु पास जाहिं हम देखैं रूप अघाइ॥

७९

माई हौ किन सग गई ।
हो ए दिन जानत ही बूड़ो लोगन को सिखई ॥
मा को वैरी कुटुँब सब फेरि फेरि ब्रज गाड़ी ।
जो हौं कैसंहु जान पावती तौ कत आवत छाँड़ी ॥
अबहौं जाइ यमुनजल बहिहौं कहा करौं मोहिं राखी ।
सूरदास वा भाइ फिरत हौं ज्यो मधु तोरे माखी ॥

\+ \+ \+

८०

हौं तौ माई मथुरा ही पै जैहौं ।
दासी ह्वै वसुदेवराइ की दरशन देखत रैहौं ॥
राखि राखि एते दिवसन मोहि कहा कियो तुम नीको ।
सोऊ तौ अक्रूर गए लै तनक खिलौना जी को ॥
मोहि देखिकै लोग हँसेंगे अरु किन कान्ह हँसै ।
सूर अशीश जाइ देहौं जिनि न्हातहु बार खसै ॥

\+ \+ \+

८१

पंथी इतनी कहियो बात।
तुम बिनु इहाँ कुँवरवर मेरे होत जिते उतपात॥
बकी अघासुर टरत न टारे बालक बनहिं न जात।
ब्रजपिंजरी रूँधि मानों राखे निकसन को अकुलात॥
गोपी गाय सकल लघु दीरघ पीत बरण कृश गात।
परम अनाथ देखियत तुम बिनु केहि अवलंबिये प्रात॥
कान्ह कान्ह कै टेरत तब धौं अब कैसे जिय मानत।
यह व्यवहार आजु लौं है ब्रज कपट नाट छल ठानत॥
दसहू दिशि ते उदित होत है दावानल के कोट।
आँखिन मूँदि रहत सन्मुख ह्वै नाम कवच दै ओट॥
ए सब दुष्ट हते अरि जेते भए एक ही पेट।
सत्वर सूर सहाइ करौ अब समुझि पुरातन हेट॥

\+ + +

८२

सँदेसौ देवकी सौं कहियो।
हौं तौ धाइ तुम्हारे सुत की माया करति नित रहियो॥

जदपि टेव तुम जानति उनकी तऊ मोहिं कहि आवै।
प्रातहि उठत तुम्हारे कान्हहि माखन-रोटी भावै॥
तेल उवटनो अरु तातो जल ताहि देखि भजि जाते।
जोइजोइ माँगत सोइसोइ देती क्रम क्रम करि करि न्हाते॥
सूर पथिक, सुनि मोहिं रैन दिन बढ्यौ रहत उर सोच।
मेरो अलक लड़ैतो मोहन ह्वै है करत सँकोच॥

\+ + +

८३

हौं इहाँ गोकुल ही तें आई।
देवकी माई पाँइ लगति हौं, जसुमति इहाँ पठाई॥
तुम सों महरि जुहार कह्यो है कहहु तौ तुमहिं सुनाऊँ।
वारेक वहुरि तुम्हारे सुत कौ कैसहुँ दरसन पाऊँ॥
तुम जननी जग-विदित सूर प्रभु हौं हरि की हितधाई।
जौ पठवहु तौ पाहुन नाते आवहिं बदन दिखाई॥

८४

ऊधौ, तुम ब्रज की दसा बिचारौ ।
ता पीछे यह सिद्धि आपनी, जोग-कथा विस्तारो ॥
जा कारन तुम पठये माधौ सो सोचौ जिय माहीं ।
कितनौं बीच बिरह परमारथ, जानत हो किधौं नाहीं ?
तुम परबीन चतुर कहियत हो, सन्तन निकट रहत हो ।
जल बूड़त अवलम्ब फेन को, फिरि फिरि कहा गहत हो ॥
वह मुसुकानि मनोहर चितवनि, कैसे उर तै टारौं ।
जोग जुगति अरु मुकति परमनिधि, वा मुरली पर वारौं ॥
जिहि उर कमलनयन जु बसत हैं, तिहि निर्गुन क्यों आवै ।
सूरदास सो भजन बहाऊँ, जाहि दूसरो भावै ॥

———

बिरहिणी गोपिका

८५

ऊधौ, ना हम बिरहिन, ना तुम दास।
कहत सुनत घट प्रान रहत हैं, हरि तजु भजहु अकास ॥
बिरही मीन मरै जल बिछुरे छाँड़ि जीवन की आस।
दास भाव नहिं तजत पपीहा, बरु सहि रहत पियास ॥
पङ्कज परम पङ्क में बिहरत, विधि कियौ नीर निरास।
राजिव रबि को दोष न मानत, ससि सौं सहज उदास ॥
प्रगट प्रीति दसरथ प्रतिपाली, प्रियतम को बनबास।
सूरस्याम सौं प्रतिव्रत कीन्हौं, छाँड़ि जगत उपहास ॥

\+ + +

८६

सब जग तजे प्रेम के नाते।
चातक स्वाति बूँद नहिं छाँड़त, प्रगट पुकारत ताते ॥
समुझत मीन नीर की बातैं, तजत प्रान हठि हारत।
जानि कुरङ्ग प्रेम नहिं त्यागत, जदपि व्याध सर मारत ॥

निमिष चकोर नैन नहिं लावत, ससि जोवत जुग बीते
ज्योति पतङ्ग देखि बपु जारत, भये न प्रेम घट रीते ॥
कहि अलि,क्यो बिसरति वे बातैं सङ्ग जो करि ब्रजराजै ।
कैसे सूरस्याम हम छाँड़ैं, एक देह के काजै ॥

\+ + +

८७

कहियो श्याम सों समुझाइ ।
वह नातो नहिं मानत मोहन मनौ तुम्हारी धाइ ॥
एक बार माखन के काजे राखे मैं अटकाई ।
वाको बिलग मानो जिनि मोहन लागत मोहिं बलाई ॥
बारहि बार इहै लव लागी गहे पथिक के पाँइ ।
सूरदास या जननी को जिय राखौ वदन देखाइ ॥

× × ×

८८

यद्यपि मन समुझावत लोग ।
शूल होत नवनीति देखि मेरे मोहन के मुखयोग ॥
प्रातकाल उठि माखन रोटी को बिन माँगे देहै ।
अब उहि मेरे कुँवर कान्ह को छिन छिन अङ्कम लैहै ॥

कहियो पथिक जाइ घर आवहु राम कृष्ण दोउ भैया ।
सूर श्याम कत होत दुखारी जिनके मो सी मैया ॥

\+ + +

८९

मेरो कहा करत हैहै ।
कहियहु जाइ वेगि पठवहिं गृह गाइनि को द्वैहै ॥
दीजै छाँड़ि नगर वारी सब प्रथम बोरि प्रतिपारो ।
हमहूँ जिय समुझैं नहिं कोऊ तुम तजि हितू हमारो ॥
आजुहि आजु कालिह कालिहहि करि भलो जगत यश लीन्हों ।
आजहुँ कालिह कियो चाहत हो राज्य अटल करि दीन्हो ॥
परदा सूर वहुत दिन चलती दुहुँहुनि फबती लूटि ।
अंतहु कान्ह आयहौ गोकुल जन्म जन्म की वूटि ॥

९०

मेरो कान्ह कमलदललोचन ।
अवकी वेर वहुर फिरि आवहु कहाँ लगे जिय सोचन ॥
यह लालसा होत जिय मेरे वैठी देखत रैहौं ।
गाइ चरावन कान्ह कुँवर सो भूलि न कवहूँ कैहौं ॥

करत अन्याय न बरजौं कबहूँ अरु माखन की चोरी।
अपने जियत नैन भरि देखौं हरि हलधर की जोरी॥
एक बेर ह्वै जाहु इहाँ लौं अनत कहूँ के उत्तर।
चारिहु दिवस आनि सुख दीजै सूर पहुनई सूतर॥

९१

ब्रज ते पावस पै न टरीं।
शिशिर बसंत शरद गत सजनी बीती औधि करी॥
उनै उनै घन बरषत चष उर सरिता सलिल भरी।
कुमकुम कज्जल कीच बहै जनु कुचयुग पारि परी॥
ताहू में प्रगट विषम ग्रीषम ऋतु इतयो ताप मरी।
सूरदास प्रभु कुमुद चन्द्र बिनु बिरहा तरनि जरी॥

\+ \+ \+

९२

अब वर्षा को आगम आयो।
ऐसे निठुर भयो नँदनंदन सदेसो न पठायो॥
बादर घोर उठे चहुँ दिशि ते जलधर गरजि सुनायो।

एकै शूल रही मेरे जिय बहुरि नहीं ब्रज छायो ॥
दादुर मोर पपीहा बोलत कोकिल शब्द सुनायो ।
सूरदास के प्रभु सों कहियो नैनन है झर लायो ॥

९३

ब्रज पर बदरा आये गाजन ।
मधुबन को पठए सुन सजनी फौज मदन लग्यो साजन ॥
ग्रीवारन्ध्र नैन चातकजल पिक मुख बाजे बाजन ।
चहुँ दिसि ते तनु बिरहा घेरो अब कैसे पावतु भाजन ॥
कहियत हुते श्याम परपीरक आए शङ्कर के काजन ।
सूरदार श्रीपति की महिमा मथुरा लागे राजन ॥

९४

देखियत चहुँदिशि ते घन घेरो ।
मानो मत्त मदन के हथियन बल करि बन्धन तोरो ॥
श्याम सुभग तनु चुअत गडमद बरषत थोरे थोरे ।
रुकत न पौन महावतहू पै मुरत न अंकुस मोरे ॥
बल वेनी बल निकसि नयन जल कुच कंचुकि बँद बोरे ।
मनों निकसि बगपाँति दाँत उर अवधि सरोवर फोरे ॥

तब तेहि समय आनि एरापति व्रजपति सों कर जोरे।
अब सुनि सूर कान्ह के हरि बिन गरत गात जैसे बोरे॥

———

९५

व्रज पर सजि पावस दल आयो।
धुरवा धुंधि बढ़ी दसहूँ दिसि गर्जि निसान बजायो॥
चातक मोर इतर पै दागन करत अवाजैं कोयल।
श्याम घटा गज अशन वाजि रथ चित बगपाँति सजोयल॥
दामिनि कर करवार बूँद शर इहि विधि साजे सैन।
निधरक भयो चल्यो व्रज आवत अग्र फौजपति मैन॥
हम अबला जानिकै तुम बल कहो कौन विधि कीजै।
सूर श्याम अब कै इहि औसर आनि राखि व्रज लीजै॥

\+ \+ \+

९६

ऐसे बादर ता दिन आये जा दिन श्याम गोवर्धन धार्यो
गरजि गरजि घन बरसन लागे मनो सुरपति निज वैर सँभार्यो
सबै सयोग जुरी है सजनी हठि करि घोष ७
अब को सात दिवस राखैगो दूरि गयो व्रज को रख

जब बलराम हुते या ब्रज में काहू देव न ऐसो डास्यो।
अब यह भूमि भयानक लागै विधिना बहुरि कंस अवतास्यो।
अब इह सुरति करै को हमारी या ब्रज कोऊ नाहिं हमास्यो।
सूरदास अति बिकल विरहिनी गोपिन पिछलो प्रेम सँभास्यो॥

\+ + +

९७

बहुरि बन बोलन लागे मोर।
कर संभार नन्दनन्दन को सुनि बादर को घोर॥
जिनको पिय परदेस सिधारो सो तिय परी निठोर।
मोहिं बहुत दुख हरि बिछुरे को रहत बिरह को जोर॥
चातक पिक चकोर पपीहा ए सब ही मिलि चोर।
सूरदास प्रभु बेगि न मिलहु जनम परत है बोर॥

\+ + +

९८

यहि बन मोर नहीं ए कामबान।
विरह खेद धनु पुहुप भृङ्ग गुन करिल तरैया रिपु समान॥
लयो घेरि मनो मृग चहुं दिशि ते अचूक अहेरी नहिं अजान।
पुहुप सेन घन रचित युगल तनु क्रीड़त कैसो बन निधान॥

दत मन मदन प्रेमरस उमँगि भरे मैं मैन जान।
इहि अवस्था मिले सूरदास प्रभु बदरयो नानागदै जोवनदान ॥

९९

सखी री चातक मोहिं जियावत।
जैसेहि रैन रटति पिय पिय तैसेही वह पुनि पुनि गावत ॥
अतिहि सुकण्ठ दाहु प्रीतम को तारु जीभ मन लावत।
आपु न पीवत सुधारस सजनी विरहिनि बोलि पिआवत ॥
जो ए पछि सहाय न होते प्राण बहुत दुख पावत।
जीवन सफल सूर ताही को काज पराए आवत ॥

१००

चातक न होइ कोउ विरहिन नारि !
अजहूँ पिय पिय रजनि सुरति करि झूठेहि माँगत वारि ॥
अति कृशगात देखि सखि याको अहनिशि वाणी रटत पुकारि।
देखौ प्रीति बापुरे पशु की आन जनम मानत नहिं हारि ॥
अब पति बिनु ऐसो लागत यह ज्यों सरवर शोभित बिन वारि।
त्यों ही सूर जानिए गोपी जों न कृपा करि मिलहु मुरारि ॥

बहुत दिन जीवो पपीहा प्यारो।
बासर रैनि नाँव लै बोलत भयो विरह ज्वर कारो ॥
आपु दुखित पर-दुखित जानि जिय चातक नाउँ तुम्हारो।
देखो सकल विचारि सखी जिय बिछुरन को दुख न्यारो ॥
जाहि लगै सोई पै जानै प्रेम बाण अनियारो।
सूरदास प्रभु स्वाति बूँद लगि तज्यो सिंधु करि खारो ॥

\+ + +

१०१

हौं तौ मोहन के विरह जरी रे तू कत जारत।
रे पापी तू पखि पपीहा पिउ पिउ पिउ अधराति पुकारत ॥
सब जग सुखी दुखी तू जल बिनु तऊ न तनु की बिथहि बिचारत।
कहा कठिन करतूति न समुझत कहा मृतक अबलनि शर मारत ॥
तू शठ बकत सतावत काहू होत उहै अपने उर आरत।
सूर श्याम बिनु ब्रज पर बोलत हठि अगिलेऊ जनम बिगारत ॥

\+ + +

१०२

शरद समैहू श्याम न आए।
को जानै काहे ते सजनी कहुँ विरहिन बिरमाए ॥

अमल अकास कास कुसुमिन छिति लच्छण स्वाति जनाए।
सर सरिता सागर जल उज्जवल अलिकुल कमल सुहाए॥
अहि मयङ्क मकरन्द कन्द हति दाहक गरल जिवाए।
त्रिय सब रङ्ग सङ्ग मिलि सुन्दरि रचि सचि सींच सिराए॥
सूनी सेज तुषार जमत चिरहास चन्दन बाए।
अबलहि आस सूर मिलिबे की भए ब्रजनाथ पराए॥

× × ×

१०३

छूटि गई शशि शीतलताई।
मनु मोहि जारि भसम कियो चाहत साजत मनो कलङ्क तनु काई॥
याहि ते श्याम अकास देखिये मानो धूम रह्यो लपटाई।
ता ऊपर दौ देत किरनि उर उडुगण काउनै चढ़ि इत आई॥
राहु केतु दोउ जोरि एक करि कहि इहि समै जरावहि पाई।
असे ते न पचि जात पाप में कहत सूर बिरहिन दुखदाई॥

× × ×

१०४

यह शशि शीतल काहे ते कहियत।
मीनकेत अम्बुज आनन्दित ताते ताहित लहियत॥

विरहिन अरु कमलनि त्रासत कहुँ अपकारी रथ नहिंयत ।
सूरदास प्रभु मधुबन गौने तो इतनो दुख सहियत ॥

१०५

कोऊ बरजोरी या चन्द्रहि ।
अतिही क्रोध करत हम ऊपर कुमुदिनि कुल आनंदहि ॥
कहा कहों वर्षा रवि तमचर कमलबलाहक कारे ।
चलत न चपल रहत थिरकै रथ बिरहिन के तनु जारे ॥
नीदत शैल उदधि पन्नग को श्रीपति कमठ कठोरहि ।
देति अशीश जरा देवी को राहु केतु किनि जोरहि ॥
ज्यों जलहीन मीन तनु तलफति ऐसी गति ब्रजबासिहि ।
सूरदास प्रभु आनि मिलावहु मोहन मदन गोपालहि ॥

अमल अकास कास कुसुमिन छिति लच्छण स्वाति जनाए।
सर सरिता सागर जल उज्जवल अलिकुल कमल सुहाए॥
अहि मयङ्क मकरन्द कन्द हति दाहक गरल जिवाए।
त्रिय सब रङ्ग सङ्ग मिलि सुन्दरि रचि सचि सीच सिराए॥
सूनी सेज तुषार जमत चिरहास चन्दन बाएं।
अबलहि आस सूर मिलिबे की भए ब्रजनाथ पराए॥

× × ×

१०३

छूटि गई शशि शीतलताई।
मनु मोहि जारि भसम कियो चाहत साजत मनो कलङ्क तनु काई॥
याहि ते श्याम अकास देखिये मानो धूम रह्यो लपटाई।
ता ऊपर दौ देत किरनि उर उडुगण काउनै चढ़ि इत आई॥
राहु केतु दोउ जोरि एक करि कहि इहि समै जरावहि पाई।
असे ते न पचि जात पाप मे कहत सूर बिरहिन दुखदाई॥

× × ×

१०४

यह शशि शीतल काहे ते कहियत।
मीनकेत अम्बुज आनन्दित ताते ताहित लहियत॥

विरहिन अरु कमलनि त्रासत कहुँ अपकारी रथ नहियत ।
सूरदास प्रभु मधुबन गौने तो इतनो दुख सहियत ॥

१०५

कोऊ बरजोरी या चन्द्रहि ।
अतिही क्रोध करत हम ऊपर कुमुदिनि कुल आनंदहि ॥
कहा कहों वर्षा रचि तमचर कमलबलाहक कारे ।
चलत न चपल रहत थिरकै रथ बिरहिन के तनु जारे ॥
नींदत शैल उदधि पन्नग को श्रीपति कमठ कठोरहि ।
देति अशीश जरा देवी को राहु केतु किनि जोरहि ॥
ज्यों जलहीन मीन तनु तलफति ऐसी गति ब्रजबासिहि ।
सूरदास प्रभु आनि मिलावहु मोहन मदन गोपालहि ॥

उद्धव-संदेश

उद्धव-संदेश

१०६

पहिले प्रनाम नँदराइसों।
ता पीछे मेरौ पालागन कहियो जसुमति माइ सों॥
एक बार तुम बरसाने लौं जाइ सबै सुधि लीजौ।
कहि वृषभानु महरि सौं मेरौ समाचार सब दीजौ॥
श्री दामा आदि सकल ग्वालन कौ मेरे हित हिय भेटियो।
सुख संदेस सुनाइ-सबनिकौ दिन दिनको दुख मेटियो॥
मित्र; एक मन बसत हमारे ताहि मिले सुख पाइहो।
करि करि समाधान नीको विधि मोहिं को माथौ नाइहौ॥
डरियहु जनि तुम सघन कुंज में हैं तहँ के तरु भारी।
वृन्दावन मति रहति निरन्तर कबहुँ न होति नियारी॥
ऊधौ सों समुझाइ प्रकट करि अपने मन की बीती।
सूरदास स्वामी सौं छल सौं कही सकल ब्रज प्रीती॥

१०७

ऊधौ, तुम ब्रज की दसा विचारौ।
ता पीछे यह सिद्धि आपनी, जोग कथा विस्तारौ॥
जा कारन तुम पठये माधौ, सो सोचौ जिय माहीं।
कितनौ बीच बिरह परमारथ, जानत हौ किधौं नाहीं?
तुम परिवीन चतुर कहियत हौ, संतन निकट रहत हौ।
जल बूड़त अवलंब फेन कौ, फिरि फिरि कहा गहत हौ॥
वह मुसकानि मनोहर चितवनि, कैसे उर तै टारौं।
जोग जुगति अरु मुकति परमनिधि, वा मुरली पर वारौं॥
जिहि उर कमलनयन जु बसत हैं, तिहि निर्गुन क्यों आवै।
सूरदास सो भजन बहाऊँ, जाहि दूसरो भावै॥

१०८

ऊधौ, ना हम बिरहिन, ना तुम दास।
कहत सुनत घट प्रान रहत हैं, हरि तजु भजहु अकास॥
बिरही मीन मरै जल बिछुरे छांड़ि जीवन की आस।
दास भाव नहिं तजत पपीहा, बरु सहि रहत पियास॥

१०६

पहिले प्रनाम नँदराइसों।

ता पीछे मेरौ पालागन कहियो जसुमति माइ सों
एक बार तुम बरसाने लौं जाइ सबै सुधि लीजौ;
कहि वृषभानु महरि सौं मेरौ समाचार सब दीजौ॥
श्री दामा आदि सकल ग्वालन कौ मेरे हित हिय भेटियो।
सुख संदेस सुनाइ-सबनिकौ दिन दिनको दुख मेटियो॥
मित्र; एक मन बसत हमारे ताहि मिले सुख पाइहो।
करि करि समाधान नीको बिधि मोहिं को माथौ नाइहौ॥
डरियहु जनि तुम सघन कुंज में हैं तहँ के तरु भारी।
वृन्दावन मति रहति निरन्तर कबहुँ न होति नियारी॥
ऊधौ सों समुझाइ प्रकट करि अपने मन की बीती।
सूरदास स्वामी सौं छल सौ कही सकल व्रज प्रीती॥

नगर-नारि नीके समुझैंगी तेरो वचन बनाउ।
पालागौं ऐसी इन बातनि उनहीं जाइ रिझाउ॥
जो सुचि सखा स्यामसुन्दर को अरु जिय अति सतिभाउ।
तो बारक आतुर इन नैनन वह मुख आनि देखाउ॥
जो कोउ कोटि करै कैसेहू विधि विद्या व्यौसाउ।
तो सुन 'सूर' मीन के जल बिनु नाहिन और उपाउ॥

× × ×

१११

और सकल अङ्गन ते ऊधो अँखियाँ बहुत दुखारी।
अधिक पिराति सिराति न कबहूँ अमित जतन करि हारी॥
चितवति मग सुनिमेष न मिलवति विरह विकल भईं भारी।
भरि गईं विरह-बाइ माधो तन इकटक रहत उघारी॥
अलि आली गुरुज्ञान सलाका क्यों सहि सकति तुम्हारी।
'सूर' सुअंजन आंजि रूप-रस आरति हरौ हमारी॥

+ + +

११२

ऊधो, हम आजु भईं बड़ भागी।
जिन अखियन तुम स्याम विलोके ते अँखियाँ हम लागी॥

पंकज परम पंक में विहरत, विधि कियौ नीर निरास ।
राजिव रवि को दोष न मानत, ससि सौं सहज उदास ॥
प्रगट प्रीति दसरथ प्रतिपाली, प्रियतम कौ वनवास ।
सूरस्याम सौं प्रतिव्रत कीन्हौं, छांड़ि जगत-उपहास ॥

१०९

सब जग तजे प्रेम के नाते ।
चातक स्वाति बूँद नहिं छाँड़त, प्रगट पुकारत ताते ॥
समुझत मीन नीर की बातैं, तजत प्रान हठि हारत ।
जानि कुरंग प्रेम नहिं त्यागत, जदपि व्याध सर मारत ॥
निमिष चकोर नैन नहिं लावत, ससि जोवत जुग बीते ।
ज्योति पतंग देखि बपु जारत, भये न प्रेम घट रीते ॥
कहि अलि, क्यों बिसरतिवे बातै, संग जो करि ब्रजराजै ।
कैसें सूरस्याम हम छांड़ैं, एक देह के काजै ॥

११०

हमको हरि की कथा सुनाउ ।
ए आपनी ग्यान-गाथा अलि, मथुरा ही लै जाउ ।

नगर-नारि नीके समुझैंगी तेरो बचन बनाउ।
पालागौं ऐसी इन बातनि उनही जाइ रिझाउ॥
जो सुचि सखा स्यामसुन्दर को अरु जिय अति सतिभाउ।
तौ वारक आतुर इन नैनन वह मुख आनि देखाउ॥
जो कोउ कोटि करै कैसेहू विधि विद्या ब्यौसाउ।
तौ सुन 'सूर' मीन के जल बिनु नाहिन और उपाउ॥

× × ×

१११

और सकल अङ्गन ते ऊधो अँखियाँ बहुत दुखारी।
अधिक पिराति सिराति न कबहूँ अमित जतन करि हारी॥
चितवति मग सुनिमेष न मिलवति बिरह विकल भईं भारी
भरि गई बिरह-बाइ माधो तन इकटक रहत उघारी॥
अलि आली गुरुज्ञान सलाका क्यों सहि सकति तुम्हारी।
'सूर' सुअंजन आंजि रूप-रस आरति हरौ हमारी॥

\+ \+ \+

११२

ऊधो, हम आजु भई बड़ भागी।
जिन अखियन तुम स्याम-विलोके ते अँखियाँ हम लागी॥

जैसे सुमन-बास लै आवत पवन मधुप अनुरागी ;
अति आनन्द होत है तैसे अग अग सुखरागी ॥
ज्यों दरपन में दरसन देखत दृष्टि परम रुचि लागी ।
तैसे 'सूर' मिले हरि हमको बिरह-व्यथा तनु त्यागी ॥

११३

ऊधो, जोग जोग हम नाहीं ।
अबला सार ग्यान कहा जानैं, कैसे ध्यान धराहीं ॥
ते ए मूँदन नैन कहत हैं, हरि-मूरति जा माहीं ।
ऐसी कथा कपट की मधुकर, हम ते सुनी न जाहीं ॥
स्रवन चीर अरु जटा बँधावहु, ए दुख कौन समाहीं ।
चन्दन तजि अँग भसम बतावत, बिरह-अनल अति दाहीं ।
जोगी भरमत जेहि लगि भूले सो तो है अपु माहीं ।
'सूर स्याम' ते न्यारे न पल छिन, ज्यो घट तै परछाहीं ॥

११४

ऊधौ इतनी जाइ कहो ।
सबै बिरहिनी पाइँ लागति हैं मथुरा कान्ह रहो ॥

भूलिहि जिनि आवहिं यहि गोकुल तम रैनि ज्यों चन्द ।
सुन्दर बदन श्याम कोमलतनु क्यों सहिहैं नँदनन्द ॥
मधुकर मोर प्रबल पिक चातक वन उपवन चढ़ि बोलत ।
मनहुँ सिंह की गर्ज सुनत गो वत्स दुखित तनु डोलत ॥
आसन भए अनल विष अहि सम भूषण विविध विहार ।
जित जित फिरत दुसहु द्रुम द्रुम प्रति धनुष धरे सनु मार ॥
तुम हो सन्त सदा उपकारी जानत हौ सब रीति ।
सूरदास ब्रजनाथ बचै तौ क्यों नहिं आवै ईति ॥

× × ×

११५

मधुकर इतनी कहियहु जाइ ।
अति कृश गात भई ए तुम बिनु परम दुखारी गाइ ॥
जलसमूह बरषति दोउ आँखैं हूँकति लीने नाउँ ।
जहाँ जहाँ गोदोहन कीनो सूँघति सोई ठाउँ ॥
परति पछार खाइ छिन ही छिन अति आतुर ह्वै दीन ।
मानहु सूर काढि डारी है वारि मध्य ते मीन ॥

× × ×

११६

तुम बिनु हम अनाथ ब्रजबासी ।
इतनो सँदेसो कहियो ऊधो कमलनैन बिनु त्रासी ॥

जा दिन तें तुम हमसों बिछुरे भूख नींद सब नासी।
विह्वल विकल कलहू न परत तनु ज्यों जल मीन निकासी॥
गोपी ग्वाल बाल बृन्दावन खग मृग फिरत उदासी।
सबई प्राण तज्यो चाहत हैं को करवत को कासी॥
अंचल जोरे करत बीनती मिलिबे को सब दासी।
हमरो प्राणघात ह्वै निबरे तुम्हरे जाने हाँसी॥
मधुकर कुसुम न तजत सखी री छाँड़ि सकल अबिनासी।
सूर स्याम बिन यह बन सूनो शशि बिन रैनि निरासी॥

\+ + +

११७

सबै करति मनुहारि ऊधो कहियो हो जैसे गोकुल आवैं।
दिन दस रहे सु भली कीन्ही अब जनि गहरु लगावैं॥
नहिं न सोहात कछू हरि तुम बिनु कानन भवन न भावैं।
धेनु विकल सो चरत नहीं तृण बछा न पीवन धावैं॥
देखत अपनी आँखि तुमहिं तन और कहा बातन समुझावैं।
सूरदास प्रभु कठिन हीन तन कत अब वै ब्रजनाथ कहावैं॥

\+ + +

११८

ऊधो हरि बेगहि देहु पठाइ।
नँदनंदन दरशन बिनु कट मरौं ब्रज अकुलाइ॥

मातु यशुमति-सहित व्रजपति परे धरणि मुरझाइ।
अति विकल तनु प्राण त्यागन करै कछु गति आइ॥
सकल सुरभी यूथ दिन प्रति रुदति पुर दिश धाइ।
जहाँ जहाँ दुहि बन चराई मरति तहाँ बिललाइ॥
परम प्यारी शरद राधिका लई गृह दुख छाइ।
तजत चक्र न वक्र चखै बिनु करै कोटि उपाइ॥
योगपद लै देहु योगिहि हमहिं योग मिलाइ।
मधुप बिछुरे बारि मीनहि अनत कहा सोहाइ॥
आजु जेहि बिधि श्याम आवै कहो तेहि बिधि जाइ।
सूरदास बिरह ब्रजजन जरत लेहु बुझाइ॥

———

११९

ऊधो एक मेरी बात।
बूझियो हरवाइ हरि सों प्रथम कहि कुशलात॥
तुम जो इह उपदेस पठायो आनि योग मन ज्ञान।
सत्यहू सब वचन झूठो मानिए मन ध्यान॥
और ब्रज कहि दूसरोहू सुन्यो कहा बलबीर।
जाहि बरजन इहाँ पठयो करि हमारी पीर॥
आपु जब ते गए मथुरा कहत तुमसों लोग।
सहज ही ता दिवस ते हम भूलियो भय भोग॥

प्रगट पति पितु मात प्रभु जन प्राण तुम आधीन।
ज्यों चकोरहि सँग चकोरी चित्त चदहि लीन॥
रूप रसन सुगन्ध परसन रुचि न इन्द्रिन आन।
होति हौंस न ताहि विष की कियो जिन मधुपान॥
ह्वै गए मन आपुही सव गिनत गुन गन ईश।
ज्ञान की अज्ञान ऊधो तृण तोरि दीजै शीश॥
वहुत कहा कहैंहि केशोराइ परम प्रवीन।
सूर सुमत नछाँड़ि हैं जहाँ जिवत जल विन मीन॥

× × ×

१२०

अव अति चकितवंत मन मेरो।
आये हों निर्गुण उपदेशन भयो सगुन को चेरो॥
मैं कछु ज्ञान कह्यो गीता को तुमहि न परह्यो नेरो।
अति अज्ञान जानिकै अपनो दूत भयो सव केरो॥
निज जन जानि हरि इहाँ पठायो दीनो बोझ घनेरो।
सूर मधुप उठि चले मधुपुरी वोरि योग को वेरो॥

× × ×

पद्यरचना – उद्धव संवाद

१२१

ऊधो तिहारे मैं चरणन लागौं
एक बार बारक यहि ब्रज करियो विभावरी।
निशि न नींद आवै दिवस न भोजन भावे
चितवत मग भई दृष्टि झावरी॥
एक श्याम बिन कछू न भावै
रटत फिरत जैसे बकत बावरी॥
या वृन्दावन सघन श्याम बिनु
तहाँ यमुना बहै सुभग साँवरी॥
लाजि न होति उहै चलि जाती वहाँ
चलि न सकत आवै विरहताब री।
सूरदास प्रभु आनि मिलावहु
ऊधो कीरति होइ रावरी॥

१२२

ऊधो तिहारे पाँइ लागति हौं कहियो श्याम सों इतनी बात।
इतनी दूर बसत क्यो बिसरे अपनी जननी तात॥
जा दिन ते मधुपुरी सिधारे श्याम मनोहर गात।
ता दिन ते मेरे नैन पपीहा दरश प्यास अकुलात॥

जहाँ खेलन को ठौर तुम्हारे नन्द देखि मुरझात।
जो कबहूँ उठि जात खरिक लौं गाइ दुहावन प्रात॥
दुहत देखि औरन के लरिका प्राण निकसि नहिं जात।
सूरदास बहुरो कब देखौं कोमल कर दधि खात।

१२३

तब तुम मेरे काहे को आये।
मथुरा क्यों न रहे यदुनन्दन जोपै कान्ह देवकी जाए॥
दूध दही काहे को चोरयो काहे को बन गाइ चराए।
अघ अरिष्ट काली नाहिं काढ्यो विप जल ते सब सखा जिआए॥
सूरदास लोगन के भोरए काहे कान्ह अब होत पराए॥

१२४

ऊधो हम ऐसे नहिं जानी।
सुत के हेत मर्म नहिं पायो प्रगटे शारँगपानी॥
निशिवासर छाती सों लाई बालक लीला गाई।
ऐसे कबहूँ भाग होहिंगे बहुरो गोद खेलाई॥
को अब ग्वाल सखा सङ्ग लीन्हें साँझ समै व्रज आवै।
को अब चोरि चोरि दधि खैहै मैया कवन बोलावै॥

बिद्रत नाहिं बज्र की छाती हरि वियोग क्यों सहिए।
सूरदास अब नँदनन्दन बिनु कहो कौन विधि रहिए॥

१२५

ऊधो जो अब कान्ह न ऐहैं।
जिन य जअरु जानौ हृदय बिचारो हम अतिही दुख पैहैं॥
पूँछो जाइ कवन को ढोटा तब कहा उत्तर दैहैं।
खायो खेले संग हमारे याको कहा बतैहैं॥
गोकुल अरु मथुरा के बासी कहाँ लौं झूठे कैहैं।
अब हम लिखि पठयो चाहत हैं वहाँ पता नहिं पैहैं॥
इन गायन चरवो छाँड़ो है जो नहिं लाल चरैहैं।
इतने पर नहिं मिलत सूर प्रभु फिरि पाछे पछितैहैं॥

× × ×

१२६

तव ते छीन शरीर सुभाहु।
आधो भोजन सुबल करत है ग्वालन के उर दाहु।
नन्द गोप पिछवारे डोलत नैनन नीर प्रवाहु।
आनन्द मिट्यो मिटी सब लीला काहु न मन उत्साहु॥

एक बेर बहुरो ब्रज आवहु दूध पतूखी खाहु ।
सूर सुपथ गोकुल जो बैठहु उलटि मधुपुरी जाहु ॥

१२७

कहियो यशुमति की आशीस ।
जहाँ रहो तहाँ पर लाड़िलो जीबो कोटि बरीस ॥
मुरली दई दोहनी घृत भरि ऊधो धरि लई सीस ।
इह घृत तौ उनहीं सुरभिन को जो प्यारी जगदीस ॥
ऊधो चलत सखा मिलि आए ग्वालबाल दस बीस ।
अबके यहाँ ब्रज फेरि बसावो सूरदास के ईस ॥

१२८

ऊधो, अँखियाँ अति अनुरागी ।
इक टक मग जोवति अरु रोवति भूलेहु पलक न लागी ॥
बिन पावस पावस रितु आई देखत हैं विदमान ।
अब धौं कहा कियो चाहत है छाँड़हु निरगुन ग्यान ॥
सुनि प्रिय सखा स्यामसुन्दर के जानत सकल सुभाइ ।
जैसे मिलैं 'सूर' के स्वामी तैसो करहु उपाइ ॥

१२९

प्रेम प्रेम ते होय, प्रेम तें पारहि जइयै।
प्रेम बँधो संसार, प्रेम परमारथ लहियै॥
एकै निहचै प्रेम को, जीवन मुक्ति रसाल।
साँचो निहचै प्रेम को, जिहि रे मिलैं गोपाल॥
ऊधो, कहि सत-भाय, न्याय तुम्हरे मुख साँचे।
जोग प्रेम रस कथा, कहौ कचन कै काँचे॥
जाके पर है हूजिये, गहिये सोई नेम।
मधुप हमारी सौं कहौ, जोग भलो कै प्रेम॥
सुनि गोपी के बैन, नेम ऊधो के भूले।
गावत गुन गोपाल, फिरत कुंजन में फूले॥
खिन गोपी के पाँ परै, धन्य सोइ है नेम।
धाइ धाइ द्रुम भेंटई, ऊधो छाके प्रेम॥
धनि गोपी धनि ग्वाल, धन्य सुरभी बनचारी।
धनि यह पावन भूमि, जहाँ गोविंद अभिसारी॥
उपदेसन आये हुते, मोहिं भयो उपदेस।
ऊधो जदुपति पै चले, धरे गोप को भेस॥
भूले जदुपति नांउ, कह्यो गोपाल गोसाइं।
एक बार ब्रज जाहु, देहु गोपिन दिखराई॥
वृन्दावन सुख छाँड़िकै, कहाँ बसे हौ आइ।
गोवर्द्धन-प्रभु जानि कै, ऊधो पकरे पाँइ॥

ऊधो ब्रज को नेम-प्रेम बरनौ सब आई।
उमग्यो नैननीर, बात कुछ कही न जाई॥
सूर स्याम भूलत भये, रहे नैन जल छाइ।
पोंछि पीतपट सो कह्यौ, भले आए जोग सिखाइ॥

+ + +

१३०

हमारे श्याम चलन कहत हैं दूरि।
मधुवन बसत आस हुती सजनी अब सरिहैं जु बिसूरि॥
कौनं कहौं कौन सुनि आई किहि रुख रथ की धूरि।
सगहि सबै चलौ माधव के नातौ मरिहौ झूरि॥
दच्छिण दिशि यह नगर द्वारका सिंधु रह्यो जलपूरि।
सूरदास प्रभु बिनु क्यों जीवों जात सजीवन मूरि॥

× × ×

१३१

नैना भए अनाथ हमारे।
मदनगोपाल वहाँ ते सजनी सुनियत दूरि सिधारे॥
वै जलधर हम मीन बापुरी कैसे जिवहिं निनारे।
हम चातक चकोर श्यामघन वदन सुधा निधि प्यारे॥

मधुवन वसत आस दरशन की जोइ नैन मग हारे।
सूर श्याम करी पिय ऐसी मृतकहु ते पुनि मारे॥

१३२

जिन कोउ काहू के वस होहि।
ज्यों चकई दिनकर बस डोलति मोहि फिरावत जोहि॥
हम तौ रीझि लटू भईं लालन! महा प्रेम जिय जानि।
बंध अवध अमित निसिबासर को सुरझावति आनि॥
उरझे संग अङ्ग अंगन प्रति बिरह बेलि की नाईं।
मुकुलित कुसुम नयन निद्रा तजि रूप सुधा सियराईं॥
अति आधीन हीन मति व्याकुल कहाँ लौं कहौं बनाई।
ऐसी प्रीति करी रचना पर 'सूरदास' बलि जाई॥

१३३

सुन ऊधो, मोहि नेक न बिसरत वे ब्रजबासी लोग।
तुम उनको कछु भलो न कीनों निसिदिन दियो वियोग॥
जदपि वसुदेव देवकी मथुरा सकल राज-सुख-भोग।
तदपि मनहि बसत बंसीबट ब्रज जमुना संयोग॥

वे उत रहत प्रेम अवलम्बन इतते पठयो जोग।
'सूर' उसास छाँड़ि भरि लोचन बढ़यो बिरह ज्वर सोग ॥

———

१३४

सुनिए ब्रज की दसा गोसाईं।
रथ की धुजा पीतपट भूषन देखत ही उठि धाईं ॥
जो तुम कही जोग की बातैं ते मैं सबै सुनाईं ॥
स्रवन मूँदि गुन करम तुम्हारे प्रेम मगन मन गाईं ॥
औरो कछु सन्देस सखी इक कहति दूरि लौं आईं।
हुतो कछू हमहू सों नातो निपट कहा बिसराईं ॥
'सूरदास' प्रभु बन बिनोद करि जो तुम गऊ चराईं।
ते गऊ दीन हीन अति दीखैं मानों भई पराईं ॥

———

१३५

ब्रज के बिरही लोग दुखारे।
बिन गोपाल ठगे से ठाढ़े अति दुरबल तनु कारे ॥
नन्द जसोदा मारग जोवत नित उठि साँझ सकारे।
चहुँदिसि 'कान्ह कान्ह' करि टेरत अंसुवन बहत पनारे ॥

गोपी गाइ ग्वाल गोसुत सब अति ही दीन बिचारे।
'सूरदास' प्रभु बिन यों सोभित चन्द्र बिना ज्यों तारे॥

१३६

कहाँ लौं कहिए ब्रज की बात।
सुनहु स्याम, तुम बिनु उन लोगन जैसे दिवस बिहात॥
गोपी गाइ ग्वाल गोसुत वे मलिन वदन कृस गात।
परम दीन जनु सिसिर हेमहत अंबुज गन बिन पात॥
जो कहुँ आवत देखि दूर ते सब पूँछत कुसलात।
चलन न देत प्रेम आतुर उर कर चरनन लपटात॥
पिक चातक बन बसन न पावहिं बायस बलिहि न खात।
सूर स्याम संदेसन के डर पथिक न उहि मग जात॥

१३७

ऊधो, मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं।
वृन्दावन गोकुल तन आवत सघन तृनन की छाहीं॥
प्रात समय माता जसुमति अरु नन्द देखि सुख पावत।
माखन-रोटी दह्यो सजायो, अति हित साथ खवावत॥

गोपी ग्वाल बाल सँग खेलत, सब दिन हँसत सिरात।
'सूरदास' धनि धनि व्रजवासी, जिन सों हँसत व्रजनाथ॥

———

१३८

हरिजी सुनो बचन सुजान।
बिरह व्याकुल छीन तन मन हीन लोचन प्रान॥
इहैहै सन्देशा व्रज को माधो सुनहु निदान।
मैं सबै व्रज दीन देखे ज्यों बिना निर्मान॥
तुम बिना शोभा न ज्यो गृह बिना दीप भयान।
आस स्वास उसाँस घट में अवध आशा प्रान॥
जगत जीवन भक्त पालन जगतनाथ कृपाल।
करि जतन कछु सूर के प्रभु जो जीवै व्रजबाल॥

———

सुदामा-दैन्य-निवारण

हरि की लीला देखि नारद चकृत भए।
मन यह करत विचार गोमती तर गए॥
अलख निरञ्जन निर्विकार अच्युत अविनासी।
सेवत जाहि महेश शेष सुर माया दासी॥
धर्मस्थापन हेतु पुनि धारयो नरअवतार।
ताको पुत्र कलत्र सों नहिं संभवत पियार॥
हरि के षोड़श सहस रहे पतिव्रता नारी।
सबसों हरि को हेत सबै हरिजी की प्यारी॥
जाके गृह दुइ नारि होइ ताहि कलह नित होइ।
हरि विहार केहि विधि करत नैनन देखों जोइ॥
द्वारावति ऋषि पैठ भवन हरिजू के आयो।
आगे होइ हरि नारि सहित चरणन सिर नायो॥
सिंहासन वैठारिकै प्रभु धोये चरण बनाइ।
चरणोदक सिर धरि कह्यो कृपा करी ऋषिराइ॥
तब नारद हँसि कह्यो सुनो त्रिभुवनपतिराई।
तुम देवन के देव देत हौ मोहिं बड़ाई॥

बिधि महेश सेवत तुम्हैं मैं बपुरा केहि माही।
कहत तुम्हैं ब्राह्मण देवता यामे अचरज नाहीं॥

और गेह ऋषि गये तहाँ देखे जदुराई।
चमर डोलावत नारि करत दासी सेवकाई॥

ऋषि को रूखे देखि हरि बहुरि कियो सन्मान।
उहँऊ ते नारद चले करत ऐसो अनुमान॥

जा गृह में मैं जाउँ श्याम आगे ही आवत।
ताते छाँड़ि सुभाउ जाउँ अब धावत॥

जहाँ नारद श्रम करि गए तहाँ देखे घनश्याम।
पालनहू क्रीड़ा करत कर जोरे खड़ीं बाम॥

नारद जहाँ जहाँ जाइँ तहाँ तहाँ हरि को देखै।
कहुँ कछु लीला करत कहूँ कछु लीला पेखै॥

योंहीं सब गृह में गए भयो न मन विश्राम।
तब ताको व्याकुल निरखि हँसि बोले घनश्याम॥

नारद मन की भर्म ताहि इतनो भरमायो।
मैं व्यापक सब जगत वेद चारों मुख गायो॥

मैं कर्ता मैं भुक्ता मोहि बिनु और न कोइ।
जो मोको ऐसो लखै ताहि नहीं भ्रम होइ॥

बूझो सब घर जाइ सबै जानत मोहि योहीं।
हरि की हमसों प्रीति अनत कहूँ जात न क्योहीं॥

मै उदास सब सों रहों इह मम सहज सुभाइ।
ऐसो जानै मोहिं जो मम माया न रचाइ॥
तब नारद कर जोरि कह्यो तुम अज अनत हरि
तुमसे तुम बिन द्वितिय कोउ नाहीं उत्तम दुरि॥
तुम माया तुम कृपा बिनु सकै नहीं तरि कोइ।
अब मोको कीजै कृपा ज्यो न बहुरि भ्रम होइ॥
ऋषि चरित्र मम देखि कछू अचरज मति मानो।
मोते द्वितिया और कोऊ मन माहि न आनो।
मै ही कर्ता मै ही भुक्ता नहिं यामे सन्देहु
मेरे गुण गावत फिरौ लोगन को सुख देहु।
नारद करि परणाम चले हरि के गुण गावत
बार बार उरहेत ध्याय हृदय मे ध्यावत।
इह लीला करि अचरज की सूरदास कहि गाइ
ताको जो गावै सुनै सो भवजल तरि जाइ।

१४०

हरि हरि हरि हरि सुमिरन करो।
हरि चरणारविन्द उर धरो॥

विप्र सुदामा सुमिरे हरी ।
ताकी सकल आपदा टरी ॥
कहौं सो कथा सुनो चित धार ।
कहै सुनै सो लहै सुखसार ॥
विप्र सुदामा परम कुलीन ।
विष्णु भक्त सो अति लवलीन ॥
भिक्षावृत्ति उदर नित भरै ।
निशि दिन हरि हरि सुमिरन करै ॥
नाम सुशीला ताकी नारी ।
पतिव्रता अति आज्ञाकारी ॥
पति जो कहै सो करै चित लाइ ।
सूर कह्यो इक दिन या भाइ ॥

१४१

कहि न सकति सकुचति इक बात ।
केतिक दूरि द्वारिका नगरी काहे न द्विज यदुपति लौं जात ॥
जाके सखा श्यामसुंदर से श्रीपति सकल सुखन के दात ।
उनके अछत आपने आलस काहे कंत रहत कृश गात ॥
कहियत परम उदार कृपानिधि अंतर्जामी त्रिभुवनतात ।
द्रवत आपु देत दासन को रीझत हैं तुलसी के पात ॥

छाँड़ौ सकुच बाँधि पट तंदुल सूरज संग चलौ उठि प्रात।
लोचन सफल करौ प्रभु अपने हरि मुखकमल देखि बिलसात॥

\+ \+

१४२

दूरिहि ते देखै बलबीर।
अपने बालसखा सुदामा मलिनबसन अरु छीन शरीर॥
पौढ़े हुते प्रयंक परम रुचि रुक्मिणि चमर डोलावत तीर।
उठि अकुलाइ अगमने लीने मिलत नयन भरि आये नीर।
तेहि आसन बैठारि श्यामघन पूँछी कुशल करौ मन धीर।
ल्याए हौ सु देहु किन हमको अब कहा राखि दुरावत चीर।
दरशन परसि दृष्टि संभाषन रही न उर अंतर कछु पीर।
सूर सुमति तंदुल चबात ही कर पकर्‌यो कमला भइ भीर।

\+ \+ \+

१४३

यदुपति देखि सुदामा आए।
बिह्वल बिकल छीन दारिदवश करि प्रलाप रुक्मिणि समुझाए।
दृष्टि परे ते दिए संभाषण भुजा पसारि अंक लै आए
तंदुल देखि बहुत दुख उमग्यो माँगु सदामा जो मन भाए।

भोजन करत गह्यो कर रुक्मिणि सोइ देहु जो मन न डुलावै।
सूरदास प्रभु नव निधि दाता जा पर कृपा सोइ जन पावै॥

\+ + +

१४४

ऐसी प्रीति की वलि जाउँ।
सिंहासन तजि चले मिलन को सुनत सुदामा नाउँ॥
गुरुबांधव अरु विप्र जानिकै चरणन हाथ पखारे।
अंकमाल दै कुशल बूझिकै अर्धासन बैठारे॥
अर्धंगी बूझत मोहन को कैसे हितू तुम्हारे।
दुर्बल दीन छीन देखत हौं पाउँ कहाँ ते धारे॥
सन्दीपन के हम औ सुदामा पढ़े एक चटसार।
सूर श्याम की कौन चलावै भक्तन कृपा अपार॥

\+ + +

१४५

गुरु गृह जब हम वन को जात।
तुरत हमारे बदले लकरी ये सब दुख निज गात॥
एक दिवस वर्षा भई बन में रहि गए ताही ठौर।
इनकी कृपा भयो नहिं मोहिं श्रम गुरु आए भय भोर॥
सो दिन मोहिं बिसरत न सुदामा जो कीन्हों उपकार।
प्रति उपकार कहा करौं सूर अब भाषत आप मुरार॥

हरि को मिलन सुदामा आयो।
विधि करि अरघ पाँवड़े दीने अंतर प्रेम बढ़ायो॥
आदर बहुत कियो यादव पति मर्दन करि अन्हवायो।
चोआ चन्दन अगर कुमकुमा परिमल अंग चढ़ायो॥
पूरबजन्म अदात जानिकै तातें कछू मँगायो।
मूठिक तन्दुल बाँधि कृष्ण को वनिता बिपठायो॥
समदै विप्र सुदासा घर को सर्वसु दै पहुँचायो।
सूरदास बलि बलि मोहन की तिहूँ लोक पदपायो॥

१४६

सुदामा गृह को गमन कियो। जाना
प्रगट विप्र को कछु न जनायो मन में बहुत दियो॥
वोई चीर कुचील वोई विधि मोको कहा कियो।
धरिहौ कहा जाय त्रिय आगे भरि भरि लेत हियो॥
भयो सन्तोष भाव मन ही मन आदर बहुत कियो।
सूरदास कीन्हें करनी बिन को पछिताइ हियो॥

१४७

सुदामा मन्दिर देखि डर्यो।
शीश धुनै दोऊ कर मींड़ै अन्तर सांच पर्यो॥

मसलना पे

ठाढ़ी त्रिया मार्ग जोवै जा ऊँचे चरण धर्यो।
ताहि आदर्यो त्रिभुवन को नायक अब क्यों जात फिर्यो॥
इहाँ हुती मेरी तनिक मड़ैया को नृप आनि छर्यो।
सूरदास प्रभु करि यह लीला आपद विप्र हर्यो॥

१४८

देखत भूलि रह्यो द्विज दीन।
ढूँढ़त फिरै न पूँछन पावै आपुन गृह प्राचीन॥
किधौं देवमाया बौरायो किधौ अनत ही आयो।
तृणहु की छाँह गई निधि माँगत अनेक जतन करि छायो॥
चितवत चकित चहूँ दिशि ब्राह्मण अद्भुद रचना रीति।
ऊँचे भवन मनोहर छज्जा मणि कंचन की भीति॥
पति पहिचान धरी मन्दिर ते सूर त्रिया अभिराम।
आवहु कत देखि हरि को हित पाउँ धारिए धाम॥

१४९

भूलो द्विज देखत अपनो घर।
औरहि भाँति रची रचना रुचि देखत ही उपज्यो हिरदय डर॥
कै यह ठौर छिनाइ लियो कहुँ आइ रह्यो कोऊ समरथ नर।
कै हो भूलि अनतखड आयो यहु कैलास जहाँ सुनियत हर॥

बुधजन कहत दुबल घातक विधि सोइ न आजु लह्यो यह पटतर।
ज्यों नलिनी बन छाँड़ि बसी जल दाही हेम जहाँ पानी सर॥
जगजीवन जगदीश जगतगुरु अविगति जानि भर्‌यो।
आवा चले मन्दिर अपने ही कमलाकन्त धर्‌यो॥
ता पीछे त्रिय उतरि कह्यो पति चलिये घरहि गहे कर से कर।
सूरदास यह सब हित हरि को रोप्यो द्वार सुभगति कलपतर॥

१५०

कहा भयो मेरो गृह माटी को।
हौं तो गयो गुपालहि भेंटन और खर्च तंडुल गाँठी को॥
बिनु ग्रीवा कल सुभग न आन्यौ हुतो कमंडलु काठी को।
घुनो बाँस गत बुन्यो खटोला काहू को पलँग कनक-पाटी को॥
नौतन पीरे दिकुयुगतीपै भूषण हुते न लोह माटी को।
सूरदास प्रभु कहा निहोरा मानतु रंक त्रास टाटी को॥

१५१

कहौ कैसे मिले श्याम संघाती।
कैसे गए सुकन्त कौन बिधि परसे हुते वस्तर कुटिल कुजाती।

सुनि सुंदरि प्रतिहार जनायो हरि समीप रुक्मिणी जहाती ॥
उभै मुठी लीनी तन्दुल की संपति सचित करी ही थाती ।
सूर सु दीनबन्धु करुणामय करत बहुत जे। श्री न रिसाती ॥

\+ + +

१५२

ऐसे मोहिं और कौन पहिंचानै ।
सुन सुन्दरी दीनबन्धु बिन कौन मिताई मानै ॥
कहाँ हम कृपण कुचील कुदरशन कहाँ वै यादवनाथ गुसाईं ।
भेटे हृदय लगाय अंक भरि उठि अग्रज की नाईं ॥
निज आसन बैठारि परम रुचि निज कर चरण पखारे ।
पूँछी कुशल श्यामघनसुन्दर सब सङ्कोच निवारे ॥
लीन्हें छोरि चीर ते चाउर कर गहि मुख मे मेले ।
पूरबकथा सुनाइ सूर प्रभु गुरुगृह बसे अकेले ॥

\+ + +

१५३

हरि बिन कौन दरिद्र हरै ।
कहत सुदामा सुन सुन्दरि जिय मिलन न हरि बिसरै ॥
और मित्र ऐसे समया महँ कत पहिंचान करै ।
बिपति परे कुशलात न बूझै बात नहीं बिचरै ॥

उठिकै मिले तंदुल हरि लीने मोहन बचन फुरै।
सूरदास स्वामी की महिमा टारी निधि न टरै।।

× × ×

१५४

और को जानै रस की रीति।
कहाँ हौं दीन कहाँ त्रिभुवनपति मिले पुरातन प्रीति।।
चतुरानन तन निमिष न चितवत इती राज की नीति।
मोसों बात कही हृदय की गए जाहि युग बीति।।
विनु गोविंद सकल सुख सुंदरि भुस पर की सी भीति।
हौं कहा कहौं सूर के प्रभु के निगम करत जाकी कीति।।

× × ×

१५५

गोपाल विना और मोहिं ऐसो कौन सँभारै।
हँसत हँसत हरि दौरि मिले सु उर ते उर नहिं टारै।।
छीन अग जीरन वस्त्र दीन मुख निहारै।
मम तन रज पथ लागी पीत पट सों झारै।।
सुखद सेज आसन दीन्हों सु हाथ पाँय पखारै।
हरि हित हर गंग धरे पदजल सिर ढारै।।

कहि कहि गुरुगेहकथा सकल दुख निवारै ।
न्याय निज वपु सूरदास हरिजी ऊपर वै वारै ॥

१५६

दीन द्विज द्वारे आइ रहो ठाढ़ो ।
नाम सुदामा कहत नाथ जो दुखी आहि अति गाढ़ो ॥
सुनतहि वचन कमल-दल-लोचन कमला दल उठि धाए ।
त्रिभुवन नाथ देखि अपनो प्रिय हित सो कंठ लगाए ॥
आदर करि मन्दिर लै आने कनक पलँग बैठाए ।
कथा अनेक पुरातन कहि कहि गुरु के धाम बताए ॥
खइबे को कछु भाभी दीन्हों श्रीपति श्रीमुख बोले ।
फेंट उपर तें अंजुल तंदुल बल करि हरिजू खोले ॥
दुइ मूठी तंदुल मुख मे ले बहुरो हाथ पसार्‍यो ।
त्रिभुवन दै करि कह्यो रुक्मिणी अपनो दान निवार्‍यो ॥
बिदा कियो पहुँचे निज नगरी हेरत भवन न पायो ॥
मन्दिर रही नारि पहिचान्यो प्रेमसमेत बुलायो ॥
दीनदयाल देवकी नंदन वेद पुकारत चारो ।
सूर सु भेटि सुदामा को दुख हरि दारिद्र मिटारो ॥

प्रभास-मिलन

१५७

नन्द-जसोदा सब ब्रजबासी।
अपने अपने सकट साजि कै मिलन चले अविनासी॥
कोउ गावत कोउ बेनु बजावत कोउ उतावल धावत।
हरि दरसन-लालसा-कारन बिबिध मुदित सब आवत॥
दरसन कियो आइ हरिजू को कहत सपन की साँची।
प्रेम मानि कछु सुधि न रही अँग रहे स्याम रँगराची॥
जासों जैसी भाँति चाहिये ताहि मिले त्यों धाइ।
देस-देस के नृपति देखि यह प्रेम रहे अरगाइ॥
उमँग्यो प्रेम-समुद्र दसहुँ दिसि परमिति कही न जाइ।
'सूरदास' इह सुख सो जानै जाके हृदय समाइ॥

१५८

रुक्मिनि राधा ऐसे बैठीं।
जैसे बहुत दिनन की बिछुरी एक बाप की बेटी॥

एक सुभाउ एक लै दोऊ, दोऊ हरि कौं प्यारी।
एक प्रान मन एक दुहुँन को तनु करि देखियत न्यारी॥
निज मन्दिर लै गई रुक्मिनी पहुनाई विधि ठानी।
'सूरदास' प्रभु तहँ पगु धारे जहाँ दोउ ठकुरानी॥

भक्त-का-आवेदन

१५९

चरन कमल बन्दौं हरि राई।

जाकी कृपा पंगु गिरि लघै, अन्धे को सब कुछ दरसाई ॥

बहिरौ सुनै, मूक पुनि बोलै, रङ्क चलै सिर छत्र धराई।

सूरदास स्वामी करुनामय, बार बार बन्दौं तेहि पाई ॥

१६०

करुनामय तेरी गति लखि न परै।

धर्म अधर्म, अधर्म धर्म करि, अकरन करन करै ॥

जय अरु विजय कर्म कहा कीनो, ब्रह्म-सराप दिवायो।

असुर जोनि ता ऊपर दीनीं धर्म-उछेद करायो ॥

पिता वचन खडै सो पापी, सो प्रह्लादहि कीनो।

निकसे खम्भ-बीच ते नरहरि ताहि अभय पद दीनो ॥

दान धर्म बहु कियो भानु-सुत सो तुव विमुख कहायो।

वेद विरुद्ध सकल पांडव-सुत सो तुम्हरे मन भायो ॥

जग्य करत वैरोचन को सुत, देव विमल विधि कर्मा।
सो छलि बाँधि पताल पठायो कौन कृपानिधि धर्मा॥
द्विजकुल पतित अजामिल विषयी गनिका नेह लगायो।
सुत-हित नाम लियो नारायन सो वैकुण्ठ पठायो॥
पतिव्रता जालन्धर-जुवती सो पतिव्रत ते टारी।
दुष्ट पुंश्चली अधम सुगनिका सुवा पढ़ावत तारी॥
मुकति हेतु जोगी श्रम कीनों असुर बिराधहिं पावै।
अविगत गति करुनामय तेरी सूर कहा कहि गावै॥

१६१

आजु हौं एक-एक करि टरिहौं।
कै हमहीं कै तुम हीं माधव, अपुन भरोसे लरिहौं॥
हौं तो पतित सात पीढ़िन को, पतितै ह्वै निस्तरिहौं।
अबहौ उघरि नचन चाहत हौं, तुम्हैं बिरद बिनु करिहौं॥
कत अपनी परतीत नसावत, मैं पायो हरि हीरा।
सूर पतित तबहीं लै उठि है जब हँसि देहौ बीरा॥

१६२

छाँड़ि मन हरि बिमुखन को सङ्ग।
जिन के सङ्ग कुबुधि उपजति है परत भजन में भङ्ग॥

कहा होत पय पान कराये विष नहिं तजत भुजङ्ग।
कागहि कहा कपूर चुगाये स्वान न्हवाये गङ्ग॥
खर को कहा अरगजा-लेपन मर्कट भूषन अङ्ग।
गज को कहा न्हवाये सरिता बहुरि धरै खहि छङ्ग॥
पाहन पतित बान नहि वेधत रीतौ करत निषङ्ग।
सूरदास खल कारि कामरी चढ़त न दूजौ रङ्ग॥

× × ×

१६३

अब मैं नाच्यौ बहुत गुपाल।
काम क्रोध को पहिरि चोलना, कंठ विषय की माल॥
महामोह के नूपुर बाजत, निन्दा शब्द रसाल।
भरम भर्यो मन भयो पखावज, चलत कुसङ्गति चाल॥
तृस्ना नाद करत घट भीतर, नाना विधि दे ताल।
माया को कटि फेंटा बांध्यो, लोभ तिलक दै भाल॥
कोटिक कला काछि देखराई, जल थल सुधि नहिं काल।
सूरदास की सबै अविद्या, दूरि करौ नंदलाल॥

१६४

मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै?
जैसे उड़ि जहाज कौ पंछी फिरि जहाज पै आवै॥

कमलनैन को छाँड़ि महातम, और देव को धावै।
परम गङ्ग कौ छाँड़ि पियासो, कुमति कूप खनावै॥
जिन मधुकर अम्बुज-रस चाख्यो, क्यो करील फल खावै।
सूरदास प्रभु कामधेनु तजि, छेरी कौन दुहावै॥

———

१६५

सोइ रसना जो हरिगुन गावै।
नैनन की छबि जहै चतुरता ज्यो मकरन्द मुकुन्दहि ध्यावै॥
निर्मल चित्त तौ सोई साँचौ कृष्ण बिना जिय और न भावै।
स्रवननि कीजु यहै अधिकाई सुनि रस कथा सुधारस प्यावै॥
कर तेई जे स्यामहिं सेवे चरननि चलि वृन्दावन जावै।
सूरदास जैयें बलि ताके जो जो हरिजू सो प्रीति बढ़ावैं॥

\+ + +

१६६

जाको मन लाग्यो नँदलालहि ताहि और नहिं भावै हो।
ज्यों गूँगो गुर खाइ अधिक रस सुख सवाद न बतावै हो॥
जैसे सरिता मिलै सिंधु कौ बहुरि प्रवाह न आवै हो।
ऐसे सूर कमललोचन ते चित नहिं अनत डुलावै हो॥

\+ + +

१६७

जनम सिरानो ऐसेहि ऐसे ।
कै घर घर भरमत जदुपति बिन, कै सोवत कै वैसे ॥
कै कहुँ खान-पान रसनादिक, कै कहुँ बाद अनैसे ।
कै कहुँ रंक कहूँ ईस्वरता, नट बाजीगर जैसे ।
चेत्यौ नहीं, गयो टरि अवसर, मीन विना जल जैसे ।
यह गति भई सूर की ऐसी, स्याम मिलैं धौं कैसे ॥

१६८

अपुनपौ आपुन ही बिसर्‌यो ।
जैसे स्वान काँच मन्दिर में भ्रमि भ्रमि भूमि भर्‌यो ।
हरि-सौरभ मृग-नाभि बसत है, द्रुम तृन सूँघि भर्‌यो ॥
ज्यों सपने मे रंक भूप भयो तसकर अरि पकर्‌यो ॥
ज्यों केहुरि प्रतिबिंब देखि कै आपुन कूप पर्‌यो ।
ऐसे गज लखि फटिक सिला में दसनन जाइ अर्‌यो ॥
मरकट मूठि छाँड़ि नहिं दीनी घर घर द्वार फिर्‌यो ।
सूरदास नलिनी को सुवना कहि कौने जकर्‌यो ॥

× × ×

१६९

हम भक्तन के, भक्त हमारे।
सुनु अर्जुन परतिग्या मेरी, यह व्रत टरत न टारे॥
भक्तै काज लाज हिय धरि कै पाइं पयादे धाऊँ।
जहँ जहँ भीर परै भक्तन पै, तहं तहं जाइ छुड़ाऊँ॥
जो मम भक्त सों बैर करत है, सो निज वैरी मेरो।
देखि विचारि भक्त हित कारन, हाँकत हौं रथ तेरो॥
जीते जीत भक्त अपने की हारे हारि विचारौं।
सूरदास सुनि भक्त-विरोधी, चक्र-सुदर्शन जारौं॥

१७०

सुआ, चलु वा बन को रसु लीजै।
जा बन कृष्ण-नाम-अमरित-रस, स्रवन पात्र भरि पीजै॥
को तेरों पुत्र पिता तू काको, मिथ्या भ्रम जग केरो।
काल-मंजार लै जैहै तोकों, तू कहै मेरो मेरो॥
हरि नाना रस-मुक्ति छेत्र चलु, तोकों हौं दिखराऊं।
'सूरदास' साधुन की संगति, बड़े भाग्य जो पाऊं॥

१७१

रे मन मूरख, जनम गँवायो।
करि अभिमान विषय-रस राच्यो, स्याम सरन नहिं आयो॥
यह संसार फूल सेमर को, सुन्दर देखि भुलायो।
चाखन लाग्यो रुई उड़ि गई, हाथ कछू नहिं आयो॥
कहा भयो अब के मन सोचे, पहिले नाहिं कमायो।
कहत 'सूर' भगवन्त-भजन विन, सिर धुनि धुनि पछितायो॥

× × ×

१७२

जा दिन मन पंछी उड़ि जैहैं।
ता दिन तेरे तन तरुवर के, सबै पात झरि जैहैं॥
घर के कहैं वेगि ही काढ़ौ, भूत भये कोउ खैहैं।
जा प्रीतम सों प्रीति घनेरी, सोऊ देखि डरैहैं॥
कहँ वह ताल कहाँ वह सोभा, देखत धूरि उड़ैहैं।
भाइ बंधु अरु कुटुम्ब कवीला, सुमिरि सुमिरि पछितैहैं॥
विन गोपाल कोउ नहिं अपनो, जस अपजसु रहि जैहैं।
जो 'सूरज' दुर्लभ देवन कौ, सतसङ्गति में पैहैं॥

१७३

सदा एकरस एक अखंडित आदि अनादि अनूप ।
कोटि कल्प बीतत नहिं जानत, बिहरत जुगल स्वरूप ॥
सकल तत्व ब्रह्माण्ड देव पुनि, माया सब बिधि काल ।
प्रकृति पुरुष श्रीपति नारायन, सब है अस गोपाल ॥
करम जोग पुनि ग्यान उपासन, सब ही भ्रम भरमायो ।
श्रीबल्लभ गुरु तत्व सुनायो, लीला-भेद बतायो ॥
तादिन ते हरिलीला गायी, एक लच्छ पद बन्द ।
ताको सार 'सूर सारावलि', गावत अति आनन्द ॥

१७४

हमैं नँदनन्दन मोल लिये ।
जम के फन्द काटि मुकराये, अभै अजात किये ॥
भाल तिलक स्रवनन तुलसीदल, मेरे अङ्क बिये ।
मूँड़े मूड़ कंठ बनमाला, मुद्रा चक्र दिये ॥
सब कोउ कहत गुलाम स्याम को, सुनत सिरात हिये ।
'सूरदास' को और बड़ो सुख, जूठनि खाइ जिये ॥

१७५

हरि बिन कोऊ काम न आयो।

यह माया झूंठी प्रपंच, लगि, रतन सो जनम गँवायो॥
कंचन कलस विचित्र रोप करि, रचि पचि भवन बनायो।
ता में ते तेहि छिनही काढ्यो, पल भरि रहन न पायो॥
हौं तेरे ही संग जरौंगी यह कहि त्रिया धूति धन खायो।
चलत रही चित चोरि मोरि मुख, एक न पग पहुँचायो॥
बोलि बोलि सब बोलि मित्रजन, लीनों सो जिहि भायो।
पर्‍यो काज अब अंत की बिरियाँ, तिनहीं आनि बँधायो॥
आसा करि करि जननी जायो, कोटिक लाड़ लड़ायो।
तोरि लयो कटिहू को डोरा, तापर बदन जरायो॥
पतित-उधारन गनिका-तारन, सो मैं सठ बिसरायो॥
लियो न नाम नेकहू धोखे सूरदास पछतायो॥

१७६

जो तू राम नाम चित धरतौ।

अब को जन्म आगलो तेरो, दोऊ जनम सुधरतौ॥
जम को त्रास सबै मिटि जातौ, भक्त नाम तेरो परतौ।
तंदुल घिरत संवारि स्याम कौ, संत परोसो करतौ॥

घृत (घी)

होतो नफा साधु की संगति, मूल गाँठ ते टरतौ।
'सूरदास' वैकुण्ठ-पैठ मे कोउ न फेट पकरतौ॥

१७७

सबै दिन गये विषय के हेत।
तीनौ पन ऐसे ही बीते, केस भये सिर सेत॥
आँखिन अन्ध स्रवन नहिं सुनियत, थाके चरन समेत।
गंगाजल तजि पियत कूप जल, हरि तजि पूजत प्रेत॥
रामनाम बिन क्यो छूटौगे, चन्द्र गहे ज्यो केत।
'सूरदास' कछु खरच न लागत रामनाम मुख लेत॥

१७८

तब बोले जगदीस जगतगुरु, सुनो सूर! मम गाथ।
तव कृत मम जसु जो गावेगो, सदा रहै मम साथ॥
धरि जिय नेम सूर सारावलि, दच्छिन उत्तर काल।
मन वांछित फल सब ही पावैं, मिटै जनम जंजाल॥
सीखै सुनै पढ़ै मन राखै, लिखै परम चित लाय।
ताके संग रहत हौं निसिदिन, आनँद जनम बिहाय॥
सरस रंगीली लीला गावें, जुगल-चरन चित लावैं।
गर्भवास बंदीखाने में, सूर बहुरि नहिं आवैं॥

+ + +

१७९

अबके नाथ मोहिं उधारि।

मग नहीं भव-अम्बुनिधि में, कृपासिंधु मुरारि॥

नीर अति गम्भीर माया, लोभ लहरति रङ्ग।

लिए जात अगाध जल में, गहे ग्राह अनङ्ग॥

मीन इन्द्रिय अतिहिं काटति, मोट अघ सिर भार।

पग न इत उत धरन पावत, उरझि मोह सिवार॥

काम क्रोध समेत तृस्ना, पवन अति झकझोर।

नाहिं चितवन देत तिय सुत, नाम नौका ओर॥

थक्यौ वीचि बिहाल बिह्वल, सुनो करुनामूल।

स्याम! भुज गहि काढ़ि लीजै, 'सूर' ब्रज के कूल॥

१८०

प्रभु, मेरे गुन अवगुन न विचारो।

कीजै लाज सरन आये की, रबिसुत-त्रास निवारो॥

जोग जग्य जप तप नहिं कीयो, वेद बिमल नहि भाख्यो।

अति रस लुब्ध स्वान जूंठनि, ज्यों कहूँ नहीं चित राख्यो॥

जिहि जिहि जोनि फिर्‌यो सङ्कटबस, तिहि तिहि यहै कमायो।

काम क्रोध मद लोभ ग्रसित भये, परम विषय विष खायो॥

जो गिरिपति-मसि घोर उदधि में लै सुरतरु निज हाथ।
ममकृत दोस लिखै बसुधा भर, तऊ नहीं मित नाथ॥
कामी कुटिल कुचील कुदरसन, अपराधी मतिहीन।
तुमहि समान और नहि दूजो, जाहि भजौं ह्वै दीन॥
अखिल अनन्त दयालु दयानिधि, अविनासी सुखरास।
भजन प्रताप नहीं मैं जान्यो, पर्‌यो मोह की फाँस॥
तुम सर्वग्य सबै विधि समरथ, असरन-सरन मुरारि।
मोह-समुद्र 'सूर' बूड़त है लीजे भुजा पसारि॥

दो में एकौ तौ न भई।
ना हरि भजे न गृह सुख पाए, वृथा बिहाइ गई॥
ठानी हुती और कछु मन में, औरै आनि ठई।
अविगति गत कछु समुझि परति नहिं जो कछु करत दई॥
सुत सनेह तिय सकल कुटुँब मिल, निसदिन होति खई।
पद-नख-चन्द-चकोर बिमुख मन खात अँगारमई॥
विषय-विकार दवानल उपजी, मोह-बयार बई।
भ्रमत भ्रमत बहुतै दुख पायो, अजहुँ न टेव गई॥

कहा होत अबके पछताने, होनी सिर बितई।
'सूरदास' सेये न कृपानिधि, जो सुख सकलमई॥

१८२

जग में जीवत ही को नातो।
मन बिछुरे तन छार होइगो, कोउ न बात पुछातो॥
मैं मेरो कबहूँ नहिं कीजै, कीजै पंच-सुहातो।
विषयासक्त रहत निसिबासर, सुख सीरो दुख तातो॥
साँच झूँठ करि माया जोरी, आपन रूखौ खातो।
'सूरदास' कछु थिर नहिं रहई, जो आयो सो जातो॥

१८३

हरि हरि हरि हरि सुमिरन करौ।
हरि-चरनारविन्द उर धरौ॥
हरि की कथा होइ जब जहाँ।
गंगा हू चलि आवै तहाँ॥

जमुना सिन्धु सरस्वति आवै।
गोदावरी बिलम्ब न लावैं॥
सर्व तीर्थ को बासा तहाँ।
सूर हरि-कथा होवै जहाँ॥

———

शब्दार्थ

१ – महर = ग्वाल। ठहर-ठहर = ठौर ठौर। फूले = प्रसन्न। बन्दीजन = भाँट लोग। बंदनवारे = बंदनमालाएँ, आम के पत्तों और फूलों की मालाएँ, जो उत्सव के अवसर पर दरवाज़े पर बाँध दी जाती हैं। पिछले पहर = पूर्व जन्म। कारे = काले। जलधर = मेघ। हलधर = श्रीकृष्ण के जेठे भाई बलरामजी। कंस खेद = कंस का दिया हुआ दुःख। बहर = बाहर।

२—मेलत = डालते हैं। पालने = हिंडोले में। बट = यहाँ उस बटवृक्ष से आशय है जिसके आश्रय प्रलयकाल के समय, भगवान् विश्रान्ति लेते हैं। भेलत = हाथ पैर हिलाते हैं। दिगदंतौ = दिशाओं के हाथी भी। सकट = गाड़ी; सकटासुर से तात्पर्य है।

३—वारी = बलिहारी। डीठि न लागै = नजर न लग जाय। मसि-बिन्दा = काजल की बिन्दी, डिठौना। नान्ही = छोटी।

४—कुटिल = टेढ़ी। बिकट = टेढ़ी, घूँघर वाली। सीपिज = मोती। लिलार = ललाट, माथा। सुरगुरू = बृहस्पति। लोल = चञ्चल। रद-छद = ओष्ठ, ऊपर का अधर। लर = लड़।

५—ईश = शिव। विरंचि = ब्रह्मा। असित = काला। सित = सफ़ेद।

अलि = भौंरा । उरसति = हिलाती है, उथल पुथल करती है। पद्मासन = ब्रह्मा । पन्नगपति = शेषनाग ।

६—कनक = सुवर्ण । कुलहि = टोपी । मघवा = इन्द्र । धनुष = इन्द्र-धनुष । सुदेस = सुन्दर । चकुर = बाल । मंजुल = सुन्दर । रुनाई = अरुणाई, लाली । सनि = शनि, जिनका रङ्ग काला है । गुरु-असुर = शुक्र जिनका रंग सफ़ेद है । देवगुरु = बृहस्पति, जिसका रङ्ग पीला है । भौम = मंगल, जिनका रंग लाल है । विद्यु = बिजली । खंडित-बचन = तोतली बातें । जल्प = कथन, व्यर्थ की बात । घुटुरुन = घुटनों के बल ।

७—दुलराइ = दुलार करके, प्यार करके । जोइ सोइ = जो मन में आया वही । निदरिया = नींद । कान्हा = कृष्ण । सैन = इशारा । अमर = देवता ।

८—जसुमति = यशोदा । द्वैक = दो एक । तुतरै = तोतले । झरै = निकलेंगे । ररै = रटे, पुकारे । अंचरा = अंचल । अंधवारि = आँधी । घहरै = गरजता है ।

९—अरबराइ = अड़बड़ कर, लटपटा कर । बकावत = बार बार ज़ोर से कहलाते हैं । दंतुली = छोटे छोटे दाँत । महर = ग्वाल; नन्द से आशय है ।

१०—धौरी = सफेद रंग की गाय, कपिला । पय = दूध । झंगुली = छोटे बच्चों के पहनने का ढीला कुरता । कानलगि = कान के पास मुँह

लगाकर, धीरे से। दाऊ = बलरामजी। ब्यैहौं = ब्याह दूँगी। सौंह = सौगन्ध।

११—ओकि = अंजली। झलमलात = चमचमाता है। निपट = बिलकुल बरज्यौ = रोकने पर। हौं = मैं। बौराए न बहौंगौ = भुलावा देने से न मानूंगा। दाप = दर्प।

१२—वंशीबट = एक स्थान जहाँ पर वट वृक्ष के नीचे श्रीकृष्ण वन्शी बजाते थे। साँझपरे = संध्या होने पर। बहियन को = बाहों का, हाथ वाला। छींके = सीका, सिकहर। भोरी = भोली सीधी-सादी। भेद = कपट। कमरिका = कम्बल का छोटा सा टुकड़ा।

१३—कुमुद = कुई। भृङ्ग = भौरा। तमचुर = मुरगा; कुक्कुट। रोर = शब्द। खिरकन में = (खरकन में) गाय भैंस बाँधने के स्थानों में। बछरा = बछड़ा। राँभति = रंभाती हैं, बोलती हैं। विधु = चन्द्रमा

१४—आतुर = अधीर। तिमिर = अंधेरा। सुछन्द = स्वछंद, बे रोक टोक। मकरंद = पराग, रस।

१५—बल = बलरामजी। काढ़त = निकालती हैं, सँवारती है। न्हवावत = नहलाती धुलाती है। ओछत = पोंछती है। भ्वै = जमीन पर। काचो = कच्चा। पचि पचि = हैरान हो कर, जी तोड़ परिश्रम करके। हलधर = बलरामजी।

१६—खिझाया = तंग किया, चिढ़ाया। रिस = गुस्सा। हौ = मैं। तात = पिता। कत = क्यों, कैसे। बलबीर = बलरामजी। रीझे =

प्रसन्न हो रही है। चवाई = चुग़लख़ोर, व्यर्थ इधर की उधर लगाने वाला। धूत = धूर्त। सौं = सौगन्द।

१७—घिघराते = चारों ओर चक्कर लगवाते हैं, पशुओं को इकट्ठा कराते हैं। पत्याहि = विश्वास कराती है। सौंह = सौगंद। बहराद = बहला कर। अति = अधिक। रिंगाई = पैदल चला कर।

१८—भँवरा = लट्टू। चक = चकरी। अरेपर = आलापर, ताक़पर। बोलि लिये = बुला लिये। पौर = ड्योढ़ी। जोरी = जोड़ी। मोरी = मोड़ कर। तृन डारति तोरी = दाँत से दबा कर तिनका तोड़ तोड़ कर फेंकती है, जिससे कहीं नज़र न लग जाय।

१९—कनियां = गोद, उछंग। निछनियां = बिलकुल, ख़ालिस निष्कपट। मो कारन = मेरे लिये। बलि = बलैया लेती हूँ। जोरी = जोड़ी।

२० —बारे = छोटे से बालक। तनिक तनिक = छोटे छोटे, नन्हे नन्हे। चारन = चराने को। रेंगत = चलते चलते। मांझ = में। टेक = हठ।

२१—ढुटौना = लड़का, छोरा। अविगति = अज्ञात, अनिर्वचनीय। अविनाशी = नित्य, अक्षर। ऐसेउ गुन = ऐसी भी बातें।

२७—आहि = है। थापी = स्थापित की, नियंत्रित की। थिर चर = जड़ जंगम, जड़ चैतन्य। आठ बदन = आठ छेद वाली। बिपुल = बहुत। विभूति = ऐश्वर्य। थान = स्थान आसन। श्रीपति = लक्ष्मी के पति, विष्णु भगवान्। मराल = हंस। प्रसंस = प्रशंस

नीय । मानस हस = मन रूपी हंस । विमानहंस = हंसने सब गोपियों के मन पर अधिकार कर लिया है । बैसी = बैठी । रैन = रज । कुलव्रत = वंश-मर्यादा । ताग = यज्ञोपवीत, जनेऊ ।

३८—भोर = भूले के, विदेह । बरजि = रोककर ।

३९—नटवर = नाट्यकला में महा प्रवीण । मकराकृत = मछली के समान । कुटिल = टेढ़ी । विवि = दो । पूरत = भरते हैं । गौरी = एक रागिनी जो संध्या समय गाई जाती है । सुरभी = गाय । कनक मेखला = सोने की करधनी । माधुरी = शोभा ।

४०—भ्रम = अविद्या, अज्ञान । निगम = वेद । अगम = दुर्लभ । कृपा = भगवत कृपा । रस = (छमानन्द) परमानन्द । भाव = प्रेमपराभावना । दम्पति = श्रीराधा-कृष्ण ।

४१—कौशल = रचना-चातुर्य; कौतुक । सौदामिनि = बिजली । बग = बगुला । सुदेस = सुन्दर । जलधर = मेघ । वनमाला = रङ्ग बिरंगे फूलों की लम्बी माला । दूरि करी = परास्त कर दी ।

८२—देवकी = वसुदेव की स्त्री और श्रीकृष्ण की माता । माया = कृपा, प्रेम । टेव = आदत, स्वभाव । उबटना = बटना, शरीर पर मलने का सरसों, तिल चिरोंजी आदि का लेप । तातो = गरम । अलक-लड़ैतो = दुलारा, लाड़ला ।

८३—हौ = मैं । जुहार = प्रणाम, पैर छूना । बारक = एक बार । धाई = धाय ।

८४—जोगकथा = योगाभ्यास का उपदेश। परमारथ = मोक्ष मार्ग। जुगति = युक्त। मुकति = मुक्ति, मोक्ष। वारौं = निछावर करती हूँ। निगुण = सत्व, रज और तमोगुण से परे निराकार ब्रह्म। बहाऊँ = छोड़ दूँ।

८५—घट = शरीर। अकाश = (आकाश) शून्य स्थान, निराधार ध्यान। वरु = चाहे, भले ही। राजिव = कमल। उदास = निरपेक्ष।

८६—स्वाति = स्वातिनक्षत्र, कहते हैं इसी नक्षत्र से बरसी हुई बूँद को पपीहा पीता है। जब तक वह नक्षत्र नहीं आता तब तक वह प्यासा ही 'पी' 'पी' रटता रहता है। ताते = तिस से। कुरंग = मृग। व्याध = बहेलिया। सर = (शर) बाण। निमिप = पलक। जोवत = देखते हुये। वपु = शरीर। रीते = खाली। कीजै = लिये।

११०—अलि = भौंरा; यहाँ उद्धव से आशय है। नीके = भली भाँति। बनाउ = बनावट, रचना। वारक = एक बार। ब्यों = रोजगार।

१११—सिरति = ठंडी होती हैं, शान्त होती हैं। निमेप = पलक। बाइ = वायु। तन = ओर। सलाका = अंजन लगाने की सींक। आरति = पीड़ा; कष्ट।

११२—बास = गन्ध। मधुप = भौंरा।

११३—जोग-जोग = योग के योग्य; योग्य के पात्र। भसम = राख। अनल = आग। दाही = जल रही हैं। अपु = आपा, अतः-करण।

१२८—जोवति = देखती हैं। पावस = वर्षा। विदमान = (विद्यमान) प्रस्तुत।

१२६ - परमारथ = मोक्ष। निहचै = निश्चय, सिद्धान्त। सतभाय = सत्य भाव, निष्कपटता। कञ्चन = सोना। कांचे = कांच। पर = लौलीन, अधीन। सौं = सौगन्ध। नेम = नियम, ज्ञानमार्गीय-सिद्धान्त। फूले = आनन्द-मग्न। खिन = क्षण। पां = पैर। छाके = छके हुये। सुरभी = गाय। अभिसारी = विहार करने वाले प्रेमानुरागी। हुते = थे। पै = पास। उमग्यो = भर आया।

१५७—सकट = बैलगाड़ी। अविनासी = नित्य, परब्रह्मस्वरूप श्रीकृष्ण। वेनु = बाँसुरी। उतावल = जल्दी जल्दी। लालसा = उत्कण्ठा। रंग रांची = प्रेम में मग्न। रहे अरगाइ = चुप हो गये कुछ कहते न बना। परमिति = परिमाण, हद।

१५८—ठकुरानी = महारानी।

१५६—राई = राय राजा। मूक = गूँगा। छत्र = राज-छत्र। पाई = चरण।

१६०—अकरन करन करै = असम्भव को सम्भव कर दिखाता है। सराप = शाप। उच्छेद = विनाश, ध्वंस। नरहरि = नृसिंह भगवान। भानुसुत = सूर्य के वीर्य से और कुंती के गर्भ से उत्पन्न कर्ण। वैरोचन को सुत = विरोचन का पुत्र, बलि। पुँश्चली = व्यभिचारिणी, कुलटा। मुकति = मुक्ति, मोक्ष।

१६१—उघरि—खुल कर। विरद = बाना। बीरा = पान का बीड़ा।

१६२—हरि-विमुख = नास्तिक। अरगजा = चंदन, कपूर, खस आदि

सुगंधित चीजों का लेप ।-मर्कट = बन्दर । खहि = धूल, मिट्टी । छंग = (उछंग) गोद, अङ्क । निषङ्ग = तरकस ।

१६३ — चोलना = कुरते की तरह का एक बहुत लम्बा पहनावा । महामोह = घोर अविद्या वा अज्ञान । पखावज = मृदङ्ग । नाद = शब्द । घट = शरीर । काछि = पहन कर ।

१६४— कमलनैन = कमल जैसे नयन वाले, विष्णु भगवान । करील = एक कटीली झाड़ी, जिसमें पत्तियाँ नहीं होतीं । इसके फलों को टेंटी कहते हैं । छेरी = बकरी ।

१६५—मकरंद = पराग । तेई = वे ही ।

१६६—गुर = गुड । कमललोचन = कमल जैसे नेत्रवाले, श्रीकृष्ण ।

१६७ —ऐसे ऐसे = व्यर्थ के काम करते करते । बैसे = बैठे हुये । अनैसे = बुरा, ख़राब । ईश्वरता = ऐश्वर्य, वैभव । बाजीगर = जादूगर, इन्द्रजाली ।

१६८— अपुनपो = आत्म-भाव, आत्म स्वरूप । काँच-मन्दिर = शीशा जड़ा हुआ मकान । भूसि-भूक = भूक कर । हरि सौरभ = कस्तूरी । तसकरि = चोर । केहरि = सिंह । फटिक = स्फटिक पत्थर । अर्यो = अड़ गया । नलिनी = कमलनी, कमल । सुबटा = मृणाल तंतु ।

१६९—परि तिग्या = प्रतिज्ञा । भीर = कष्ट । सुदर्सन = वह चक्र जिसे विष्णु धारण किया करते हैं । जारौं = जला देता हूँ ।

१७०—सुआ = जीव से तात्पर्य है । केरो = का । मजार = बिल्ली ।

१७१ - रांच्यौ = रंगा रहा, पगा रहा । सेमर = शाल्मलि । कमायौ = (सत्कर्मों का) संचय किया । धुनि-धुनि = पीट-पीट ।

१७२—तन तरुवर = शरीर रूपी सुन्दर पेड़ । पात = पत्ते । घनेरी = अधिक । कबीला = स्त्री, परिवार । सूरज = सूरदास ।

१७३—जुगलस्वरूप = श्रीराधाकृष्ण । सकल तत्त्व = पचमहाभूत, पंच ज्ञानेन्द्रिय पंच कर्मेन्द्रिय, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, पंच तन्मात्रा आत्मा । किसी के मत से २४, किसी के मत से २५ और किसी के मत से २६ तत्त्व हैं । श्रीपति = लक्ष्मीपति विष्णु जो बैकुण्ठ में रहते हैं । नारायण = नारायण जो क्षीर सागर में शेषनाग पर विराजमान हैं । गोपाल = महा विष्णु-स्वरूप श्रीकृष्ण । करम = कर्म कांड । जोग = योगाभ्यास । श्रीवल्लभ = महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य । इन्हीं महाराज ने विष्णुस्वामि संप्रदाय के अन्तर्गत 'शुद्धाद्वैत' मत का प्रतिपादन किया है । सूरदास इन्हीं के पट्ट शिष्य थे । तत्त्व = सार स्वरूप प्रेम परा भक्ति का गूढतम रहस्य ।

१७४—मुकराये = छुड़ाये । अजात = जन्म रहित, मुक्त । दिये = उत्पन्न किये, लगा दिये । मुद्रा = चिन्ह विशेष, छाप । चक्र = विष्णु का आयुध, जिसकी छाप वैष्णव लोग अपनी भुजाओं पर लगाते हैं । सिरात = ठंडा होता है शान्त होता है ।

१७५—प्रपंच = संसार का जंजाल । रोपि करि = स्थापित कर । पचि = जी तोड़ मेहनत करके । त्रिया = स्त्री । धूर्ति = धूर्त । मोरि-मुख = मुख मोड़कर, हाव भाव दिखाकर, कटाक्ष मारकर

अंत की बिरियाँ = मृत्यु-समय। बँधायो = अर्थी पर बाँधकर रक्खा। लाड़ लड़ायो = प्यार-दुलार किया। गनका = वेश्या. पिङ्गला नाम की वेश्या से अभिप्राय है।

१७६—तदुल = चावल। घिरत = (घृत) घी। परोसो = थाली या पत्तल भर भोजन। पैंठ = हाट, बाज़ार। फेंट = कमर में बंधा हुआ कपड़ा। फेंट पकड़ने का अर्थ इस प्रकार पकड़ना है कि जिससे कोई भाग न पाये।

१७७—तीनौपन = बचपन, जवानी और बुढापा। ऐसे ही = व्यर्थ ही। गङ्गाजल = भगवद्भक्ति से अभिप्राय है। कूप जल = संसारी कामना से अभिप्राय है। प्रेम = भूत। केत = केतु नव ग्रहों में से एक।

१७८—गाथ = बात। कृत = रचित। जंजाल = झंझट, प्रपंच। मन-वाँच्छित = इच्छानुसार, मन चाहा। परम चित लाय = एकाग्र-चित होकर। जुगल = श्री राधाकृष्ण। बहुरि = फिर।

१७९—भव अंबुनिधि = संसार रूपी समुद्र। मुरारि = मुर नामक दैत्य के संहारकर्ता श्रीकृष्ण। ग्राह-अनंग = कामदेव रूपी मगर। मोट = गठरी। सिवार = पानी में फैलने वाली जाल ऐसी एक बनस्पति। नाम = भगवान का नाम। कूल = किनारा।

१८०—रविसुत = यमराज। निवारो = दूर करो। लुब्ध = लोलुप। स्वान = कुत्ता। गिरिपात = हिमालय पर्वत। मसि = स्याही। उदधि = समुद्र। सुरतरु = कल्प वृत्त। ममकृत = मेरे किये हुये। बसुधा = पृथ्वी मात्र पर। कुचील = मलिन, मैला कुचैला।

अखिल = सर्व ।

१८१—वृथा बिहाय गई = आयु व्यर्थ ही बीत गई । ठानी हुती = निश्चय किया था । अविगति = अनिर्वचनीय । दई = दैव परमात्मा । खई = विनाश, झगड़ा । दवानल = (दावानल) वन में लगी हुई आग । मोह बयार = अज्ञान रूपी वायु । बई = बही, चली । टेव = आदत ।

१८२—पुछातो = पूछनेवाला । पंच सुहातो = जो बात समाज को अच्छी लगे । विषयासक्त = भोग बिलास में लिप्त । सीरो = ठंढा, सुखदायक । तातो = गरम, दुःखदायक । माया = धन दौलत । जोरी = (जोड़ी) जमा की ।

१८३ चरनारबिन्द = कमल रूपी चरण । बासा = निवास ।

———